अलंकारचंद्रिका

(हिंदी-साहित्य की प्रारंभिक परीक्षाओं के लिये
अलंकार विषय की एक [illegible]ित पुस्तक)

स्वर्गीय लाला भगवान 'दीन'

पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

सं० १९८४ वि०

मूल्य ।।)

प्रकाशक
पुस्तक-भंडार
लहेरियासराय

छन्दःचन्द्रिका

लेखक—श्रीअच्युतानन्द दत्त
(सहकारी सम्पादक 'बालक')

मूल्य ।≈)
पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय

मुद्रक
हनुमानप्रसाद
विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

विषय-सूची

---

* श्रीराम *

अलंकारचंद्रिका



अलंकार

किसी वाक्य के वर्णन करने का 'चामत्कारिक' ढंग 'अलंकार' कहलाता है। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि जिस सामग्री से किसी वाक्य में रोचकता वा चमत्कार आ जाय वह सामग्री 'अलंकार' कहलाती है।

जैसे गहने पहनने से किसी व्यक्ति का शरीर कुछ अधिक रोचक दीख पड़ता है, वैसे ही अलंकार से वाक्य की रोचकता बढ़ जाती है। 'अलंकार' काव्य का एक आवश्यक अंग है।

मुख्य 'अलंकार' तीन प्रकार के होते हैं—(१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) जहाँ शब्दों में चमत्कार पाया जाय वहाँ शब्दालंकार कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि यदि उन शब्दों को बदलकर उनके स्थान में उनके पर्यायवाची शब्द रख दिये जायँ तो वह चमत्कार न रहेगा।

(२) जहाँ अर्थ में चमत्कार पाया जाय वहाँ अर्थालंकार माना जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि वह चमत्कार निकालकर यदि उस वाक्य का केवल तात्पर्य कहा जाय तो वह वाक्य बिलकुल सादा और अरोचक हो जायगा। जैसे कहना यह है कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है।" तो इस वाक्य को सीधे यों न कहके कि "अमुक व्यक्ति बड़ा विद्वान् है," यों कहे कि

(क) अमुक व्यक्ति दूसरा वृहस्पति है, (ख) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से लज्जित होकर वृहस्पति पीले हो गये हैं, (ग) अमुक व्यक्ति वृहस्पति के समान है, (घ) अमुक व्यक्ति की विद्वत्ता से हारकर वृहस्पति दिन में अपना मुँह नहीं दिखलाते, (ङ) अमुक व्यक्ति मनुष्य नहीं—वृहस्पति हैं इत्यादि, तो इस प्रकार के कथनों में कुछ विशेष चमत्कार आ जाता है। इसी चमत्कार को अर्थालंकार कहते हैं। यह अलंकार अर्थ पर निर्भर रहता है, इसलिये इसके शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदल दिये जा सकते हैं।

(३) ऊपर कहे हुए अलंकारों में से किसी प्रकार के एक से अधिक अलंकारों के सम्मेलन को उभयालंकार कहते हैं, परन्तु उसमें नियम यह है कि जिस अलंकार की मुख्यता समझी जायगी वही अलंकार मान लिया जायगा। इस छोटी-सी पुस्तक में हम इसका वर्णन न करेंगे।

पहला प्रकाश

शब्दालंकार

शब्दालंकार अनेक हैं, पर नीचे लिखे हुए ४ शब्दालंकार मुख्य हैं-(१) अनुप्रास, (२) यमक, (३) वक्रोक्ति और (४) श्लेष।

१—अनुप्रास *

दो०—व्यंजन सम वरु स्वर असम, अनुप्रासऽलंकार।
छेक, वृत्ति, श्रुति, लाट अरु, अंत्य पाँच विस्तार॥

* (नोट)—फारसी, अरबी तथा उर्दू में अनुप्रास, और यमक अलंकारों को "तजनीस" कहते हैं। हिन्दी की तरह इन भाषाओं में भी इन अलंकारों के अनेक भेद हैं।

विवरण—जहाँ व्यंजनों की समानता हो, चाहे उनके स्वर मिलें वा न मिलें, उसे अनुप्रास अलंकार कहते हैं। इसके ५ भेद हैं— (क) छेक (ख) वृत्ति (ग) श्रुति (घ) लाट और (ङ) अंत्य।

(क)—छेकानुप्रास

दो०—वर्ण अनेक कि एक की, आवृति एकै बार।
सो छेकानुप्रास है, आदि अंत निरधार॥

विवरण—जहाँ एक अक्षर की वा अनेक अक्षरों की आवृत्ति केवल एक बार हो, चाहे वह आदि में हो चाहे अंत में। जैसे—

उ०—राधा के बर बैन सुनि, चीनी चकित सुभाय।
दाख दुखी मिसरी मुरी, सुधा रही सकुचाय॥

यहाँ 'वर' और 'बैन' में 'ब' की, 'चीनी' और 'चकित' में 'च' की, 'दाख' और 'दुखी' में 'द' की, 'मिसरी' और 'मुरी' में 'म' की; और 'सुधा' और 'सकुचाय' में 'स' की आवृत्ति शब्दों के आदि में हुई है।

उ०—जन रंजन भंजन दनुज, मनुज रूप सुरभूप।
बिश्व बदर इव धृत उदर, जोवत सोवत सूप॥

इस उदाहरण में रंजन और भंजन में, दनुज और मनुज में, बदर और उदर में, जोवत और सोवत में अंत में दो-दो अक्षरों की आवृत्ति एक बार है। रूप और भूप में अंत में एक अक्षर की आवृत्ति है। बिश्व और बदर में तथा सोवत और सूप में आदि में एक-एक अक्षर की आवृत्ति है।

बाँधे द्वार का करी चतुर चित्त काकरी,
सो उस्मिर वृथा करी न राम की कथा करी।
पाप को पिनाक री न जाने नाक नाकरी,
सु हारिल की नाकरी निरंतर ही ना करी।

ऐसी सूमता करी न कोऊ समता करी,
सु 'बेनी' कबिता करी प्रकास तासु ताकरी।
देव अरचा करी न ज्ञान चरचा करी,
न दीन पै दया करी न बाप की गया करी॥

विवरण—इसमें 'का करी, और 'काक री' में तीन अक्षरों की आवृत्ति; 'वृथा' और 'कथा' में 'थ' की आवृत्ति, सूमता और समता में तीन अक्षरों की आवृत्ति, अरचा और चरचा में दो अक्षरों की आवृत्ति, दया और गया में एक अक्षर की आवृत्ति अंत में है। चतुर और चित्त में 'च' 'त' की आवृत्ति आदि में है। दीन और दया में 'द' की आवृत्ति आदि में है।

(ख)—वृत्यनुप्रास

दो०—वर्ण अनेक कि एक की, जहँ सरि केयों बार।
सो है वृत्यनुप्रास, जो परें वृत्ति अनुसार॥

विवरण—छेकानुप्रास की तरह आदि वा अंत में एक वर्ण की वा अनेक वर्णों की समता वृत्तियों के अनुकूल कई बार पड़े, उसे वृत्यनुप्रास कहेंगे।

सूचना—इस अलंकार को समझने के लिये पहले यह समझ लेना चाहिये कि हिन्दी-कविता में वृत्तियाँ तीन हैं—(१) उपनागरिका, (२) परुषा और (३) कोमला। इन्हीं तीनों के अन्य नाम क्रम से वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली भी हैं।

(१) माधुर्यगुणसूचक वर्ण अर्थात् टवर्ग को छोड़कर शेष मधुर वर्ण और सानुनासिक वर्ण जिस कविता में हों उसे 'उपनागरिका' वृत्ति कहते हैं। (२) टवर्ग, द्वित्तवर्ण, रेफ और श, ष इत्यादि वर्ण और लंबे समास तथा संयुक्त वर्ण जिसमें अधिक हों उसे 'परुषा' वृत्ति और (३) य, र, ल, व,

स, ह, और छोटे समास वा समासरहित शब्द जिसमें अधिक हों उसे 'कोमला' वृत्ति कहते हैं। शृंगार, करुणा और हास्य रस की कविता उपनागरिका में; रौद्र, वीर और भयानक रस की कविता परुषा में और शांत, अद्भुत तथा वीभत्स रस की कविता कोमला वृत्ति में अच्छी लगती है।

(उपनागरिका वृत्ति के अनुकूल)

धर्म धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर
बिरति बिवेक बिनय बिज्ञाना। बोध यथारथ बेद पुराना॥

पुनः—रघुनंद आनँदकंद कौसलचंद दसरथनंदनं।

पुनः—भनत मुरार देश देशन में कीर्ति गाई, ऐसी चपलाई
कहौ छाई है कवन में। नट में न नारि में न नय में न नैनन
में मृग में न मारुत में मीन में न मन में।

पुनः—सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई।

पुनः—देवबंदिनी के निमिबंसचंदिनी के युग
नीके पदकंज मिथिलेसनंदिनी के हैं॥

पुनः—दो०—लोपे कोपे इंद्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो गोपी गोपाल॥

(परुषा वृत्ति के अनुकूल)

दो०—वक्र वक्र करि पुच्छ करि, रुष्ट ऋच्छ कपिगुच्छ।
सुभटठट्ट घनघट्ट सम, मर्दहि रच्छन तुच्छ॥

कवित्त—बारि टारि डारौं कुंभकर्णहि बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यों बल अनंत हौं।
कहै 'पद्माकर' त्रिकूट हू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन को अंत हौं।

अच्छहिं निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि
तोम तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहिं उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावन को तौ मैं हनुमंत हौं।

छप्पय—मुंड कटत कहुँ रुंड नटत कहुँ सुंड पटत घन।
गिद्ध लसत कहुँ सिद्ध हँसत सुख वृद्धि रसत मन॥
भूत फिरत करि बूत भिरत सुर दूत बिरत तहँ।
चंडि नचत गन मंडि रचत धुनि डंडि मचत जहँ॥
इमि ठानि घोर घमसान अति, 'भूषन' तेज कियो अटल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल, दलि अडोल बहलोल-दल॥

पुनः—क्रुद्ध फिरत अति युद्ध जुरत नहिं रुद्ध मुरत भट।
खग्ग बजत अरि वग्ग तजत सिर पग्ग सजत चट॥
ढुक्कि फिरत मद झुक्कि भिरत करि कुक्कि गिरत गनि।
रंक रकत हर संग छकत चतुरंग थकत भनि॥
इमि करि संगर अति ही विषम 'भूषन' सुजस कियो अचल।
सिवराज साहिसुव खग्ग बल, दलि अडोल बहलोल-दल॥

पुनः—खग काक कंक शृगाल। कटकटहिं कठिन कराल।

(कोमला वृत्ति के अनुकूल)

जैसे—सत्य सनेह सील सुख सागर।

दो०—स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुखमा ऐन।

कवित्त—ख्याल ही की खोज में अखिल ख्यात खेल खेल,
गाफिल ह्वै भूलो दुख दोष को खुस्याली तें।
लाख लाख भाँति अभिलाख लखे लाल,
अरु अलख लख्यो न लखी लालन की लाली तें॥
हरिहर 'देव' प्रभु सों न पल पाली प्रीति,
दै दै करताली न रिझायो बनमाली तें।

झूठी झिलमिल की झलक ही मैं भूलो जल,
मल की पखाल खल खाली खाल पाली तैं ॥

बावन से रावन सो रामजू सों खेलि खेलि खलनि को खालनि खिलौना ज्यौं खिलाइगे। काटे काल व्याल ऐसे बली बलभद्र ऐसे बली ऐसे बालि से बबूला से बिलाइगे ॥

इन उदाहरणों में र, ख, और ल, की अनेक आवृत्तियाँ हैं।

नोट—छेक और वृत्ति अनुप्रासों को अँगरेजी में Alliteration कहते हैं। नीचे लिखा हुआ उदाहरण शेक्सपियर ने लार्ड ऊलजी को लक्ष्य करके बहुत अच्छा लिखा है।

Begot by butcher by bishop bread,
How high His Highness holds his haughty head.

पुनः—जप माला छापा तिलक, सरै न एको काम।
मन काँचे नाँचे वृथा, साँचे राँचे राम ॥

(ग)—श्रुत्यनुप्रास

दो०—जहाँ तालु कंठादि की, व्यंजनसमता होय।
सोई श्रुत्यनुप्रास है, कहत सुघर कवि लोय ॥

विवरण—जहाँ तालु कंठादि स्थानों से उच्चरित होनेवाले व्यंजनों की अर्थात् एक स्थान से उच्चरित होनेवाले वर्णों की समता हो उसे श्रुत्यनुप्रास कहते हैं।

स्मरण रहना चाहिये कि—

(१) अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और (:) विसर्ग का उच्चारण कंठ से होता है।

(२) इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य और श का उच्चारण तालु से होता है।

(३) ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष का उच्चारण मूर्द्धा से होता है।

(४) लृ, ॡ, त, थ, द, ध, न, ल और स का उच्चारण दाँतों से होता है।

(५) उ, ऊ, प, फ, व, भ और म का उच्चारण ओठों से होता है।

(६) ए, ऐ का उच्चारण कंठ और तालु से होता है।

(७) ओ औ का उच्चारण कंठ और ओठ से होता है।

(८) व का उच्चारण दाँत और ओठ से होता है।

(९) पंचम वर्ण और अनुस्वार का नासिका से होता है।

सूचना—इस विचार से जब कविता में ऐसे शब्द रक्खे जाते हैं जो एक स्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से बने हों तो उस कविता में एक प्रकार की धाराप्रवाहिनी शक्ति और मधुरता आ जाती है और उसका सुनना कानों को प्रिय लगता है। इसके विरुद्ध टगणवाले शब्द कानों में खटकते हैं। जैसे—

'तुलसिदास सीदत निसिदिन देखत तुम्हारि निठुराई'

इसमें अधिकतर दंत्य अक्षर आये हैं, इससे यह पद बहुत मीठा जान पड़ता है। और "पर कदा न विपयोत्कृष्टता कर्त्री विचारोत्कृष्टता" इस रचना में शब्दों का संगठन वैसा नहीं है, इसलिये कानों को कटु जान पड़ता है। इसी तरह और भी समझ लो। तुलसी और पद्माकर की कविता में यह गुण अधिक है।

(घ) लाटानुप्रास

दो०—शब्द अर्थ एकै रहै, अन्वय करतहि भेद।
सो लाटानुप्रास है, भाषत सुकवि अखेद ॥

विवरण—(पहले कहे हुए अनुप्रास अक्षरों के अनुप्रास हैं, यह लाटानुप्रास शब्द का अनुप्रास है) शब्द और उसका अर्थ वही रहे, केवल अन्वय करने से अर्थ में भेद हो जाय, उसे लाटानुप्रास कहते हैं। (यह अनुप्रास 'लाट' देशवाले कवियों का निकाला हुआ है, इसी से इसका यह नाम पड़ा।)

उदाहरण—

दो०—तीरथ व्रत साधन कहा, जो निसिदिन हरि गान ।
तीरथ व्रत साधन कहा, बिन निसिदिन हरि गान ॥

यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति है, केवल तात्पर्य में भेद है। अर्थात् जो मनुष्य रातदिन हरियश गान करता रहे तो उसके लिये तीर्थ, व्रत और अन्य साधन आवश्यक नहीं हैं। जिस तीर्थ, व्रत और साधन में रातदिन हरियश गान का विधान न हो वह तीर्थ, व्रत और साधन व्यर्थ है।

दो०—राम हृदय जाके बसैं, बिपति सुमंगल ताहि ।
राम हृदय जाके नहीं, बिपति सुमंगल ताहि ॥

जिसके हृदय में राम बसते हैं, उसके लिये विपत्ति भी सुमंगल हो जाती है। और जिसके हृदय में राम नहीं है, उसके लिये सुमंगल भी विपत्ति ही है।

दो०—औरन के जाँचे कहा, नहिं जाँच्यो सिवराज ? ।
औरन के जाँचे कहा, जो जाँच्यो सिवराज ? ॥

कभी-कभी कोई एक शब्द अन्य शब्दों के साथ समास द्वारा मिल जाता है। जैसे—

तुरमुती तहखाने गीदर गुसुलखाने,
सूकर सिलहखाने कूकत करीस हैं।
हिरन हरमखाने स्याही हैं सुतुरखाने,
पाढ़े पीलखाने औ करंजखाने कीस हैं।

'भूषन' सिवाजी गाजी खग्ग सों खपाये खल,
खानखाने खलन के खेरे भये खीस हैं।
खड़गी खजाने खरगोस खिलवतखाने,
खीसें खोले खसखाने खाँसत खबीस हैं।

इस कवित्त में भूषन ने सब प्रकार के अनुप्रास एकत्र दिखलाये हैं। तहखाने, गुसुलखाने, सिलहखाने, हरमखाने, सुतुरखाने, पीलखाने, करंजखाने, खिलवतखाने और खसखाने इत्यादि शब्दों में 'खाने' शब्द का अर्थ सब जगह एक ही है, परन्तु भिन्न भिन्न शब्दों के साथ समास होने से उन शब्दों के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाने से लाटानुप्रास है।

तुरमुती तहखाने, गींदर गुसुलखाने, सूकर सिलहखाने, हिरन हरमखाने, स्याही हैं सुतुरखाने, पाढ़े पीलखाने, करंजखाने कीस हैं, खरगोस खिलवतखाने, इत्यादि शब्दों में छेकानुप्रास है।

अंतिम दोनों चरणों में 'ख' की आवृत्ति अनेक बार होने से वृत्त्यनुप्रास है।

दो०—सुधा तीर्थ को भ्रमन है, रहैं हरी चित जासु।
सुधा तीर्थ को भ्रमन है, न रहैं हरि चित जासु॥

(ङ)—अंत्यानुप्रास

दो०—व्यंजन स्वरयुत एकसे, जो तुकांत में होहि।
सो अंत्यानुप्रास है, अरु तुकांत हू ओहि॥

विवरण—प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। चारों चरणों के अंत्याक्षर 'तुकांत' कहलाते हैं। इसी तुकांत को अंत्यानुप्रास कहते हैं। भाषा काव्य में तुकांत बहुत अच्छा लगता है। इसी

को फारसी तथा उर्दू में काफिया कहते हैं। भाषा काव्य में छः प्रकार के तुकांत हो सकते हैं—

१—सर्वांत्य-जैसे किसी सवैया वा कवित्त (मनहरण) के चारो तुकांत एक से होते हैं।

२—समांत्य विषमांत्य—अर्थात् पहले और तीसरे चरणों के तथा दूसरे और चौथे चरणों के तुकांत एक से हों; जैसे—

(क) जेहि सुमिरत सिधि होय, गननायक करिवर बदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिरासि सुभगुनसदन॥
(ख) मूक होहिं बाचालु, पंगु चढ़ैं गिरिवर गहन।
जासु कृपा सु दयालु, द्रवहु सकल कलिमलदहन॥
(ग) कुन्द इन्दु सम देह, उमारमन करुनाअयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दनमयन॥

३—समांत्य—जिसमें केवल दूसरे और चौथे चरणों के तुकान्त समान हों। जैसे दोहे का होता है।

दो०—एक छत्र इक मुकुट मनि, सब बरनन पर जोउ।
तुलसी रघुवर नाम के, बरन बिराजत दोउ॥
या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्जल होय॥

४—विषमांत्य—जिसमें पहले चरण और तीसरे चरणों के तुकान्त एक-से हों। जैसे—

सो०—सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना ऐन, चितै जानकी लखन तन॥
धरनि धरहु मन धीर, कह बिरंचि हरि पद सुमिरि।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजहिं दारुन बिपति॥

५—सम विषमांत्य—जिसमें पहले और दूसरे तथा तीसरे-चौथे चरणों के तुकांत एक-से हों। जैसे—

चौ०—गुनहु लखन कर हमपर रोषू । कतहुँ सुधाइहुँ तें बड़ दोषू ।
टेढ़ जानि शंका सब काहू । बक्र चंद्रमहि ग्रसै न राहू ।
छंद—पदकमल धोय चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं ।
बरु तीर मारहि लखन पै जब लगि न पाँव पखारिहौं ।
तब लगि न 'तुलसीदास' नाथ कृपालु पार उतारिहौं ।

६—भिन्नांत्य,भिन्नतुकांत वा बेतुकी—जिसमें चारो चरणों में भिन्न-भिन्न तुकांत हों । इसे अंगरेजी में 'ब्लेंकवर्स, (Blank Verse) कहते हैं । हिन्दी के प्राचीन कवियों ने ऐसी कविता नहीं लिखी, हाल में कुछ लोग लिखने लगे हैं । जैसे—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रियप्रवास' में लिखी है ।

सूचना—भिन्नतुकांत कविता के लिये कुछ वर्णिक छंद ही उपयुक्त जान पड़ते हैं—जैसे शार्दूलविक्रीड़ित, वंशस्थ, द्रुतविलंबित, इन्द्रवज्रा, भुजंगप्रयात, वसंततिलका इत्यादि । मात्रिक छंदों में 'भिन्नतुकांत' कदापि अच्छा नहीं लगता ।

२—यमक अलंकार

दो०—वहै शब्द फिरि फिरि परै, अर्थ और ई और ।
सो यमकालंकार है, भेद अनेकन ठौर ॥

विवरण—वैसा ही वैसा शब्द पुनःपुनः सुन पड़े, परंतु अर्थ जुदा-जुदा हो उसे यमक कहते हैं । इसके सबसे अधिक भेद 'केशवदास' ने अपनी 'कविप्रिया' में लिखे हैं । उदाहरण—

* इस अलकार को अँगरेजी में 'पन' (Pun) कहते हैं । उर्दू और फारसी में 'तजनीस जायद' कहेंगे ।

दो०—तो पर वारौं उरबसी, सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान॥
भजन कह्यो तासों भज्यो, भज्यो न एको बार।
दूरि भजन जासों कह्यो, सो तैं भज्यो गँवार॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह बिदेह बिसेषी।
दो०—बारन ते बारन कहूँ, होत जु बारन नाहिं।
लागी बार न बधत रिपु, इन्हें सु बारन माहिं॥

सवैया

बसुधाधर में बसुधाधर में औ सुधाधर में त्यों सुधा में लसै।
अलिवृंदन में अलिवृंदन में अलिवृंदन में अतिसै सरसै।
हिय हारन में हरिहारन में हिमिहारन में रघुराज लसै।
ब्रजबारन बारन बारन बारन बारन वार बसंत बसै।

पुनः—ऐसी परीं नरम हरम पातसाहन की नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं।

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं।
कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं,
तीन बेर खातीं सो वै तीन बेर खाती हैं।
भूखन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग,
बिजन डोलातीं ते वै बिजन डोलाती हैं।
'भूषन' भनत सिवराज बीर तेरे त्रास,
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं।

(मुक्तपदग्राह्य यमक) ⊛

दो०—चरण अंत अरु आदि के, यमक कुण्डलित होय
मुक्तपदाग्रह है वही, सिंहवलोकन सोय॥ यथा-

⊛ 'सिंहावलोकन' को फारसी में 'सनअत इरसाद' कहेंगे।

लाल है भाल सिंदूर भरो मुख सिंधुर चारु औ बाँह बिसाल है।
साल हैं सत्रुन को कवि 'देव' सुसोभित सोमकला धरे भाल है।
भाल हैं दीपत सूरज कोटि सो काटत कोटि कुसंकट जाल है।
जाल हैं बुद्धि बिवेकन को यह पारबती को लड़ायतो लाल है।

पुनः—

नामहिं के सुमिरे सुख पाइहौं और न काम गिनो जग कामहिं।
कामहिं कोऊ न आइहैं ये सुत मातु पिता प्रिय बंधु औ बामहिं।
बामहिं हैं सिगरे भव के सुख होत नहीं छिन हू बिसरामहिं।
रामहिं राम रटौ रे रटौ सब बेद पुरान को हैं परिनामहिं॥

पुनः— छप्पय

सारँग से दृग लाल माल सारँग की सोहत।
सारँग ज्यों तनु स्याम बदन लखि सारँग मोहत॥
सारँग सम कटि हाथ माथ बिच सारँग राजत।
सारँग लाये अंग देखि छबि सारँग लाजत॥
सारँग भूषन पीत पट, सारँगपद सारँगधर।
रघुनाथदास बंदन करत, सीतापति रघुबंस बर॥

सूचना-स्मरण रखना चाहिये कि लाटानुप्रास में केवल शब्दों ही की नहीं, वरन् वाक्यों तक की आवृत्ति हो सकती है, केवल अन्वय से अर्थ में हेरफेर होता है। यमक में जिस अक्षर समूह का आवर्तन होता है वह चार प्रकार का होता है—(१) दोनों निरर्थक, जैसे-"मधुपराजि पराजितमानिनी" में 'पराजि' का कुछ अर्थ नहीं। यह उत्तम यमक है। (२) एक सार्थक एक निरर्थक-जैसे "है समर समरस सुभट मरुपति बाहनी बिख्यात" में पहले 'समर' का अर्थ है युद्ध और दूसरा समर 'समरस' शब्द का एक खंड होने से निरर्थक है। (३) एक पूर्ण शब्द सार्थक, दूसरा खंड होकर सार्थक, जैसे उरबसी और उरबसी में ये दोनों मध्यम यमक हैं (४) भिन्नार्थवाची दो वा अनेक शब्द-जैसे - ऊपरवाले छप्पय में 'सारंग' शब्द है। यह अधम यमक है।

३—वक्रोक्ति

दो०—होय श्लेष सों काकु सों, कल्पित और अर्थ।
ताहि कहत वक्रोक्ति हैं, सिगरे सुकवि समर्थ॥

विवरण—कहे हुए वाक्यों का श्लेष से अथवा काकु से और ही अर्थ कल्पित करें अर्थात् जब वक्ता कोई वाक्य एक अर्थ में कहता है, और श्रोता उसका दूसरा ही अर्थ लगाता है वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। ऐसा अर्थ श्लेष से वा काकु से हो सकता है।

(श्लेष-वक्रोक्ति)

श्लेष-वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है—(१) भंगपद (२) अभंगपद।

(१) भंगपद वह है जिसके पद को तोड़फोड़कर दूसरा अर्थ किया जाय। जैसे—

"गौरवशालिनि प्यारी हमारी सदा तुमहीं इक इष्ट अहो।"

श्रीमहादेवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि हे गौरवशालिनी प्यारी! तुम्हीं हमारी सदा इष्टदेवी हो। पार्वतीजी शब्दों को तोड़कर हँसी से कहती हैं—

"हौं न गऊ नहिं हौं अवशा अलिनि हूँ नहीं अस काहे कहो" अर्थात् न मैं गौ हूँ, न 'अवशा' हूँ और न 'अलिनी' हूँ, तुम ऐसा क्यों कहते हो?

अर्थात् गौः + अवशा + अलिनि = गौरवशालिनी।

पुनः—मान तजो गहि सुमति बर, पुनि पुनि होत न देह।
मानत जोगी जोग को, हम नहिं करत सनेह॥

कोई व्यक्ति किसीसे कहता है—"हे श्रेष्ठ ! सुमति गहिके मान तजो। वह व्यक्ति शब्दों को तोड़कर 'मान तजो गहि' को 'मानत जोगहि' समझकर उत्तर देता है। पुनः

दो०—नारी के अनुकूल तुम, आचरत जु दिनरात।
कौन अरिनि सों हित करत, है वसुधा विख्यात॥

यहाँ उत्तरार्द्ध में 'नारी' शब्द को तोड़कर न+अरि करके उत्तर दिया है।

सूचना—उर्दू तथा फारसी में 'सभंगपद श्लेष' को 'तजनीस मुरक्कब' और 'अभंगपद श्लेष' को 'तजनीस नाम' कहते हैं।

(२) अभंगपद वह है जिसमें शब्द का पद तोड़ा न जाय, किंतु अनेकार्थ कोश में किसी शब्द का अर्थ ऐसा लिया जाय जो कहनेवाले के अर्थ से भिन्न हो। जैसे—

कवित्त—खोलो जू किवार, तुम को हो एती बार ?
हरि नाम है हमारो, बसो कानन पहार में।
हौं तो प्यारी माधव तो कोकिला के साथ भाग,
मोहन हौं प्यारी, पगे मंत्र अभिचार में।
रागी हौं रँगीली तौ जु जाहु काहू दाता पास,
भोगी हूँ छबीली, जाय बसौ जू पतार में।
नायक हौं नागरी तो हाँको कहूँ टाँरा जाय,
हौं तो घनश्याम, बरसो जू काहू खार में।

इसमें कृष्ण और राधिका का परिहास-वर्णन है—

कृष्णजी अपना जो नाम बतलाते हैं उसी का दूसरा अर्थ लेकर राधिका उत्तर देती जाती है। राधिकाजी का अर्थ—हरि=बंदर। माधव=वैसाख मास। मोहन=मोहनप्रयोग (मारण, मोहन इत्यादि का)। रागी=गवैया। भोगी=सर्प। नायक=बंजारा। घनश्याम=काला बादल।

पुनः—

दो०—को तुम ? हरि प्यारी ! कहा, बानर को पुर काम ।
स्याम, सलोनी ! स्याम कपि ! क्यों न डरैं तब बाम ॥

सूचना—इन उपर्युक्त उदाहरणों में यदि श्लिष्ट शब्दों को पर्याय शब्दों से बदल दें तो काव्य बिलकुल नष्टभ्रष्ट हो जायगा अर्थात् इन छंदों का कवित्व उन्हीं शब्दों पर निर्भर है, इसलिये इनमें शब्दालंकार है ।

(काकु वक्रोक्ति)

दो०—जहाँ कंठध्वनि भिन्न तैं, आसय जुदो लखाय ।
सो वक्रोक्ती काकु है, कविवर कहैं बुझाय ॥

विवरण—जहाँ शब्द के उच्चारण में कंठध्वनि से कुछ और ही अर्थ भासे वहाँ काकु समझो ।

सूचना—इसके उदाहरण रौद्ररसपूर्ण वा हास्यरसपूर्ण वादविवाद में अधिकता से हुआ करते हैं । रामायण में अंगद और रावण के संवाद में बहुत-से हैं । यथा—

अंगद-कह कपि धर्मसीलता तोरी । हमहुँ सुनी कृत परतियचोरी ।
धर्मसीलता तव जग जागी । पावा दरस हमहुँ बड़ भागी ।

अंगद—सत्य कह्यो दसकंठ सब, मोहिं न सुने कछु कोह ।
कोउ न हमरे कटक अस, तोसन लरत जो सोह ॥

पुनः—कह कपि तव गुनगाहकताई । सत्य पवनसुत मोहिं सुनाई ॥
कह अंगद सलज्ज जगमाहीं । रावण तोहि समान कोउ नाहीं ।
सो भुजबल राख्यो उर घाली । जीतेउ सहसबाहु बलि बाली ॥

सीता-मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू । तुमहिं उचित तप मोकहँ भोगू ।

पुनः दोहा—काह न पावक जारि सकै, का न समुद्र समाय ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाय ॥

राम-मानससलिलसुधा प्रतिपाली। जियै कि लवन पयोधि मराली।
वर रसालवन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला॥

सूचना—अनेक आचार्यों ने इस अलंकार को अर्थालंकार माना है, पर हम इसे शब्दालकार ही मानते हैं, क्योंकि विशेष कंठध्वनि ही से इस अर्थ का हेरफेर होता है। कंठध्वनि श्रवण का विषय है। श्रवणमात्र की अलकारता शब्दालंकार ही मानी जा सकती है।

४–श्लेष

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ॥

विवरण—ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनके दो-तीन अर्थ हो सकते हों, श्लेष अलंकार कहलाता है। इसके दो भेद होते हैं—

(१) वह जहाँ कवि का मुख्य तात्पर्य एक ही अर्थ से होता है। इसकी गणना शब्दालंकारों में हो सकती है। (२) वह जहाँ कवि का तात्पर्य दोनों वा तीनों अर्थों से होता है। इसकी गणना अर्थालंकारों में होनी चाहिये। उदाहरण—

"रावन सिर सरोज वनचारी। चली रघुवीर सिलीमुख धारी"

यहाँ पर 'सिलीमुख' शब्द के दो अर्थ हैं, (१) वाण (२) भौंरा तुलसीदासजी कहते हैं कि जैसे भौंरे दौड़कर कमलवन में जाते हैं और कमलों में घुस जाते हैं, उसी प्रकार रघुनाथजी के शिलीमुख (वाण) रावण के सिरों में घुसने लगे। तुलसीदासजी का मुख्य लक्ष्य वाणों की ओर जान पड़ता है, न कि वाण और भौंरा दोनों की ओर। इस हेतु यह श्लेष शब्दालंकार है। इसी प्रकार बिहारी कृत नीचे लिखे दोहों में एक अर्थ की मुख्यता है, इसलिये इन दोनों का श्लेष शब्दालंकार है।

दो०—अजौं तर्‌यौना ही रह्यो श्रुति सेवत इक अंग ।
नाक बास बेसरि लह्यो बसि मुकुतन के संग ॥

इसमें तर्‌यौना, श्रुति, नाक, मुकुतन शब्दों में श्लेष है। परन्तु बिहारी का मुख्य तात्पर्य कर्णफूल और नथ से है, न कि किसी मुमुक्षु से, जैसा कि श्लेष से व्यंजित होता है। इसी से यह शब्दालंकार है। इसी प्रकार नीचे के दोहों में समझना चाहिये।

दो०—जो चाहो चटक न घटै मैलो होय न मित्त ।
रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त ॥
(इसमें रज और नेह शब्दों में श्लेष है)
दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तारन काल ।
प्रगटत निर्गुन निकट ही चंग रंग गोपाल ॥
(इसमें गुन और निर्गुन शब्दों में श्लेष है)

नीचे लिखे हुए रसनिधिकृत दोहों में भी ऐसा ही समझो। इनमें 'नेह' शब्द में श्लेष है।

दो०—धनि दृगतारन के जु तिल जिनमैं स्याम सनेह ।
बिना नेह के तिल किते परे रहत हैं देह ॥
कहनावत यह मैं सुनी पोषत तनको नेह ।
नेह लगाये अब लगी सूखन सिगरी देह ॥
आपु बुसाते सज्जना नेह न दीजै जान ।
नेही तिन नेहै तजें खरि ह्वै जात निदान ॥
(खरि = खली, निर्दय)
चलि न सकैं निज ठौर ते जे तन द्रुम अभिराम ।
तहाँ आय रस बरसिबो लाजिम तोहिं घनस्याम ॥
(रस=पानी, आनंद । घनस्याम=काला बादल, कृष्ण)

सूचना—जहाँ कवि का स्वयं यह तात्पर्य होता है कि पाठक दोनों वा तीनों अर्थों की ओर ध्यान दें वह श्लेष अर्थालंकार है। प्रसंगवश उसके कुछ उदाहरण यहीं लिखे देते हैं जिससे पाठकगण दोनों के भेद और बारीकी को भली भाँति समझ सकें।

(सेनापति कवि सूम और दाता दोनों के लिये कहते हैं)

नाहीं नाहीं करें थोरे माँगे बहु देन कहें,
मंगन को देखि पट देत बार बार हैं।
जाको मुख देखे भली प्रापति की घरी होत,
सदा सुभ जन मन भाये निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरें दान पाठ पर वार हैं॥
सेनापति बैनन की रचना बिचारो जामें,
दाता अरु सूम दोऊ कीन्हें इकतार हैं॥

(१) पट=वस्त्र, किवाड़। (२) दातापक्ष में 'सुभजन मन भाये' और सूम पक्ष में 'सुभ जनम न भाये'। (३) भोगी=भोग विलास करनेवाला, और साँप। (४) कन कन=कनक न और कणकण (थोड़ा थोड़ा)।

(भूषण कवि कहते हैं)

सीता संग सोभित सुलच्छन सहाय जाके,
भूपर भरत नाम भाई नीति चारु है।
'भूषन' भनत कुल सूरकुल भूषन हैं,
दासरथी सब जाके भुज भुव भारु है॥
अरि लंक तोर जोर जाके संग बान रहैं,
सिंधुर हैं बाँधे जाके दलको न पारु है।
तेगहि कै भेंटै जौन राकस मरद जानै,
सरजा सिवाजी राम ही को अवतारु है॥

इसमें अन्तिम चरण के अन्तिम वाक्य से स्पष्ट प्रकट होता है कि कवि का लक्ष्य दोनों ओर है।

सीता संग सोभित=श्री ता संग सोभित। लच्छन=लक्ष्मण, शुभ लक्षण। भरत=भरता है, भरतजी। सूरकूल=सूर्यकूल, वीरगण। दासरथी=दशरथ के पुत्र, रथी हैं दास जिसके। लंक=लंका, कमर। बान रहैं=वाण रहते हैं, बानर हैं। सिंधुर है बाँधे=सिंधु को बाँधा, हाथी घोड़े बँधे रहते हैं। तेगहि कै भेटै=तलवार ही से भेंटता है, उसको पकड़कर भेंटता है। जौनराकस मरद जानै=जो नर अकस में मरद समझता है, जो राक्षसों को मर्दन करना चाहता है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण समझ लेना चाहिये। अर्थ श्लेष के और अधिक उदाहरण अर्थालङ्कार में दिये जायँगे।

सूचना—शब्दश्लेष में एक वा दो शब्द होते हैं और उनका श्लेषार्थ केवल उन्हीं शब्दों पर निर्भर रहता है। यदि वे शब्द पर्यायवाची शब्दों से बदल दिये जायँ तो वह अलंकार ही मिट जाता है। इसी से उसे शब्दालंकार मानना पड़ा है।

अर्थश्लेष में शब्दों को बदल देने पर भी अलङ्कार बना रहता है। कहीं ऐसा भी होता है कि कुछ शब्दों को बदल सकते हैं, कुछ को नहीं बदल सकते। ऐसे स्थान पर जिसकी प्रधानता हो वही मानना चाहिये।



[दूसरा प्रकाश]

अर्थालंकार

१—उपमा*

अर्थालङ्कारों में सर्वोत्तम और अनेक अलङ्कारों का मूल उपमा अलङ्कार है। इसी से इसे पहले लिखते हैं।

दोहा—रूप रंग गुन काहु को काहू के अनुसार।
तासों उपमा कहत हैं जे सुबुद्धि आगार॥
जाको बरनन कीजिये सो उपमेय प्रमान।
जाकी समता दीजिये ताहि कहिय उपमान॥
उपमेय रु उपमान में समता जेहि हित होय।
सो साधारन धर्म है कहत सयाने लोय॥

सो, से, सी, इव, तूल, लौं, सम, समान उर आन।
ज्यों, जैसे, इमि, सरिस, जिमि, उपमावाचक जान॥

कहीं-कहीं "रंग, नाईं, न्याय और मतिन" भी वाचक होते हैं।

विवरण—जब दो वस्तुओं में पृथकता रहते हुए भी कोई समता वर्णन की जाय तब उपमा अलंकार होता है। समता आकृति, रंग और गुण की होनी चाहिये। वर्णन करने में जिसकी

---

* अँगरेजी में इस अलंकार को 'सिमिली' (Simile) और फ़ारसी तथा उर्दू में 'तशबीह' कहते हैं।

मुख्यता हो उसे 'उपमेय', जिससे समता दें उसे 'उपमान', जिस हेतु समता दें उसे 'धर्म' और जिस शब्द के आश्रय से समता प्रकट करें उसे 'वाचक' कहते हैं। जैसे—

वंदौं कोमल कमल से जगजननी के पायँ।

इसमें कवि का मुख्य तात्पर्य जगजननी (पार्वती) के चरणों के वर्णन से है, इस हेतु 'पाँय' शब्द 'उपमेय' है। 'कमल' 'उपमान', 'कोमल' 'धर्म' और 'से' वाचक' है। उपमा के दो भेद हैं—(क) पूर्ण और (ख) लुप्ता।

क—(पूर्णोपमा)

दो०—वाचक साधारन धरम उपमेय रु उपमान।
ये चारों जहँ प्रगट तहँ पूरन उपमा जान॥

उदा०—राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥

यहाँ 'राम, लखन और सीता' उपमेय, 'बासव (इन्द्र), जयंत और शची' उपमान, 'सोहत' धर्म और 'जिमि' वाचक चारो प्रकट हैं। इसी प्रकार और भी जानो। यथा—

सो०—उदय सूर सो भाल, सिंदुर घसो गनेस को।
हरत बिघन को जाल, जो जग व्यापक तिमिर सो॥

यहाँ भाल उपमेय, सूर उपमान, उदय साधारण धर्म, सो वाचक और विघ्नजाल उपमेय, तिमिर उपमान, हरत धर्म और सो वाचक प्रकट है।

पुनः-आनँद देत चकोर हितून को है खल कोकन को दुखवारो।
कंत है संत कुमोदन को कल चाँदनी कित्ति महासित भारो॥
गोकुल सील सुधा सरसै बरसै सुख है अति ही उजियारो।
मंद करै अरबिंदन को जस कंद सो सेत महीप तिहारो॥

सेवहिं लखन सीय रघुबीरहिं। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहिं ॥
रामहिं लखन बिलोकत कैसे। ससिहिं चकोर किसोरक जैसे ॥

कवित्त—फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन,
कहै 'रघुनाथ' भरे चैनरस सियरे।
दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान,
सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे।
सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी,
चिरियासी जागी चिंता जनक के जियरे।
धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आज,
भोर के से नखत नरिंद परे पियरे।

पुनः १—करिकर सरिस सुभग भुजदंडा।
२—पीपरपात सरिस मन डोला।
३—बिरही इव प्रभु करत विषादा।

(पूर्णोपमा का चक्र)

नाम	उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म	उदाहरण।
पूर्णोपमा	राम	रवि	से	लसत	=राम रवि से लसत
	नरिन्द	भोरके नखत	से	परेपियरे	भोरकेसे नखत नरिन्द परेपियरे
	भुजदंड	करिकर	सरिस	सुभग	करिकर सरिस सुभग भुजदंडा
	मन	पीपरपात	सरिस	डोला	पीपर पात सरिस मन डोला
	प्रभु	बिरही	इव	करतविषादा	बिरही इव प्रभु करत विषादा

सूचना—उपमालंकार के प्रयोग से निम्नलिखित पाँच लाभ हैं—
(१)—अभीष्ट वस्तु का सम्यक् ज्ञान होता है।
(२)—दो वस्तुओं की चामत्कारिक तुलना से चित्त प्रसन्न होता है।
(३)—उपमाजनित परिमाणदर्शन से स्थायी शिक्षा मिलती है।

(४)—भाषा में चमत्कार और सौंदर्य आ जाता है।

(५)—थोड़े में बहुत का बोध हो जाता है।

अतः कविता में इस अलंकार की अनिवार्य आवश्यकता है।

ख-(लुप्तोपमा)

दो०—*वाचक साधारन धरम उपमेयरु उपमान।*
इन मैं इकद्वै तीन बिनु, लुप्ता बिविध बिधान ॥

विवरण—पूर्णोपमा में चार वस्तुएँ होती हैं। इनमें से जहाँ किसी का लोप हो वहाँ लुप्तोपमा कहते हैं।

इस विषय में भिन्न-भिन्न आचार्यों के भिन्न-भिन्न मत हैं। हमारे मत से जो हमें ठीक जँचते हैं उन्हीं को हम यहाँ लिखते हैं।

१—(वाचकलुप्ता)

जहाँ वाचक शब्द का लोप हो। जैसे—

१—जारि दियो उपसुंद सुत, दुसह रूप दुखधाम।
सूर सिरोमनि रावरो, राम काम अभिराम।

२—सरद मयंक बदन छवि सीवाँ।

३—नव अंबुज अंबक छवि नीकी।

४—सरद बिमल बिधु बदन सोहावन।

५—नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन बारिज नयन।

यहाँ सो, से, सम इत्यादि वाचक शब्दों का लोप किया गया है।

२—(धर्मलुप्ता)

जहाँ साधारण धर्म का लोप हो। जैसे—

१—करि प्रनाम रामहिं त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी।

२—तुम सम पुरुष न मो सम नारी।

३—गौतम नारी तरि गई, रही जो अघ सों पूरि।
पाय सजीवन मूरि सी, प्रभु पद पंकज धूरि॥

४-बाहैं भुजंग सी पल्लव से कर आँगुरी पै नख हीरक हार से।
त्यों लछिराम घटान से रंग प्रभा बिहँसे मुकुताहल थार से।
ये भ्रमरावलि लौं जुलफैं युग भौंहैं कमान सी आनन मार से।
बालमयंक लौं भालथली रघुनाथ के लोचन खंजकुमार से॥

५—कुंद इंदु सम देह, उमारमन करुनायतन।

६—करिकर सम प्रभुभुज दसकंधर।

इन उदाहरणों में साधारण धर्म का लोप किया गया है। इसी प्रकार और भी लुप्तोपमाओं में केवल नाम ही से उसकी परिभाषा जान लेनी चाहिये।

३—(उपमानलुप्ता के उदाहरण)

१—वाके से चंचल नयन, जग काहू के हैं न।

२—सुंदर नंदकिसोर सो, जग में मिलै न और।

३-लक्खन राम से राज समाज में राजत कौन महीप के बारे।

४-समर धीर नहिं जाय बखाना। तेहि सम नहिं प्रतिभट जग आना।

४—(उपमेयलुप्ता के उदाहरण)

१—चंचल हैं ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस।
निरखि न होय अधीन, ऐसो नर नागर कवन॥

२-साँवरे गोरे घटा छटा से बिहरें मिथिलेश की बागथली में।

५—(वाचकधर्मलुप्ता)

जिसमें वाचक शब्द और साधारण धर्म का लोप किया जाय। जैसे-

१-ईसप्रसाद असीस तुम्हारी। सब सुतबधू देवसरि बारी।

२-विधुबदनी मृगसावकलोचनि।

३—लखु लखु सखि सारसनयन इंदुबदन घनस्याम।
बिज्जुहास दाड़िमदसन, बिंबाधर अभिराम॥
४—केहरिकंधर चारु जनेऊ।
५—लहि प्रसाद माला जु भौ, तनु कदंब की माल।

सूचना—इसके कथन में बड़ी सावधानी चाहिये। तनिक ही भेद से यह अलंकार रूपक अलंकार हो जाता है।

६—(धर्मोपमानलुप्ता)

जिसमें धर्म और उपमान का लोप किया जाय। जैसे—

१—रे अलि मालति सम कुसुम, ढूँढ़ेहु मिलिहैं नाहिं।

यहाँ मालती कुसुम उपमेय, सम वाचक मौजूद है। सुंदर, मनोहर आदि धर्म का और 'मिलिहैं नाहीं' कहकर उपमान का लोप किया गया है।

२—आजु पुरंदर सम कोउ नाहीं।
३—देखो दाड़िम से दसन।

यहाँ 'दसन' उपमेय और 'से' वाचक मौजूद है। स्वेत, चमकीले इत्यादि धर्म का और 'दाड़िमबीज' उपमान का लोप है, क्योंकि केवल 'दाड़िम' दाँतों का उपमान नहीं कहा जा सकता। दाड़िम शब्द केवल उसका लक्षक है।

४—देख्यों खोजि भुवनदसचारी। कहँ अस पुरुष कहाँ अस नारी॥

७—(धर्मोपमेयलुप्ता)

जहाँ धर्म और उपमेय का लोप किया जाय। जैसे—

१—त्यौर तिरीछे किये मुनि संगहि हेरत संभु सरासन मार से।
त्यों लछिराम दुहूँ कर बान कमानसी भौंहैं सु ब्रह्मवतार से॥
सामुहैं श्रीमिथिलापति के डटि ठाढ़े सही रस बीर सिंगार से।
नीलम चंपक माल से कौन? स्वयंवर में मृगराजकुमार से॥

यहाँ मार से, रस बीर सिंगार मे, नीलम चंपक माल से और मृगराजकुमार से इत्यादि में उपमान और वाचक मौजूद हैं। धर्म का प्रत्यक्ष लोप है। अज्ञानसूचक 'कौन' शब्द कहकर उपमेय का लोप किया गया है, जो मुनि संग, श्रीमिथिलापति के सामुहें, और स्वयंवर इत्यादि के साहचर्य से लक्षित होता है।

८—(वाचकोपमेयलुप्ता)

जहाँ वाचक और उपमेय का लोप किया जाय। जैसे—

१-अटा उदय होतो भयो, छबिधर पूरन चंद।

२-चढ़ो कदम पै कालिया, विषधर देखो आय।

९—(वाचकोपमानलुप्ता)

जिसमें वाचक और उपमान का लोप किया जाय। जैसे—

१-तेरे ये कटु बचन हू सुनत हियो हरषात।

२-सूच्छम हरि कटि एन।

३-चितवनि चारु मारमद हरनी। भावति हृदय जाति नहिं बरनी।

४-अरुण नयन उर बाहु बिसाला।

५-सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।

६-मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेह बिदेह बिसेखी।

१०—(वाचकधर्मोपमानलुप्ता)

जिसमें केवल उपमेय का जिक्र हो और युक्ति से उपमान का अभाव कहा जाय।

१-राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।

२-अहै अनुप राम प्रभुताई। बुधि बिबेक बल तरकि न जाई।

३-देखि अनूप एक अमराई।

४—अति अनूप जहँ जनक निवासू।
५—बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेऊ, सो तनु बरनि न जाय।

सूचना—'वाचकधर्मउपमेयलुप्ता' का रूपकातिशयोक्ति अलग ही एक अलंकार है। 'धर्मोपमानोपमेयलुप्ता' में केवल वाचक रहेगा, जिससे कोई अलंकारता नहीं आ सकती, और 'वाचकोपमेयलुप्ता' में केवल साधारण धर्म के कथन से अलंकारता आ नहीं सकती।

२—मालोपमा

दो०—जहँ एकै उपमेय के, बरनैं बहु उपमान।
भिन्न अभिन्नहि धर्म तें, मालोपमा बखान॥

विवरण—जहाँ एक उपमेय के बहुतसे उपमान कहे जायँ, वहाँ मालोपमा अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है—

(१) भिन्नधर्मा और (२) एकधर्मा।

(भिन्नधर्मा मालोपमा)

जहाँ अनेक उपमानों के पृथक्-पृथक् धर्मों के वास्ते उपमा दी जाय। जैसे—

तेज निधानन में रवि ज्यों छविवंतन में बिधु ज्यों छवि छाजै।
सैलन में ज्यों सुमेरु लसै बर बृच्छन में कलपद्रुम राजै॥
देवन में मतिराम कहै मघवा जिमि सोहत सिद्ध समाजै।
राउ छतासुत भाऊ दिवान जहान के राजन में इमि राजै॥
दो०—मरकत से दुतिवंत हैं, रेसम से मृदु बास।
निपट महीन सुनार से, कच्च काजर से स्याम॥
बंदौं खल जस सेस सरोषा। सहस बदन बरनै पर दोषा॥
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनै सहसदस काना॥
बहुरि सक्रसम बिनवौं तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥

दो०—सफरी से चंचल बने, मृग से पीन सुरेन ।
कमलपत्र से चारु ये, राधेजू के नैन ॥

(एकधर्मा मालोपमा)

जहाँ सब उपमानों का एक धर्म कथन किया जाय वा अनुमान कर लिया जाय । जैसे—

हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहिं हरिहिं श्री सागर दई ।
तिमि जनक रामहिं सिय समरपी विस्व कल कीरति नई ॥
जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद्रबिनु जिमि जामिनी ।
तिमि अवध 'तुलसीदास' प्रभुबिनु, समुझि धौं जिय भामिनी ॥
बैनतेय बलि जिमि चह कागू । जिमि सस चहै नाग अरि भागू ।
जिमि चह कुसल अकारन कोही । सुखसंपदा चहै सिवद्रोही ॥
लोभी लोलुप कीरति चहई । अकलंकिता कि कामी लहई ।
हरिपद बिमुख परम गति चाहा । तस तुम्हार लालच नरनाहा ॥

कवित्त-सारद सों, सेस सों, सुधा सो, सक्रसिंधुर सो,
सुरसरिता सो, सूर ससि सो बखान है ।
हंसन सो, हीरन सो, हिम सो, हलायुध सो,
हरिगिरि, हास्य हू सो जपत जहान है ।
भनत 'मुरार' घनसार, सर्दघन हू सो,
पारद सो, पय सो पिनाकी सो, प्रमान है ॥
आज युद्ध जीत जस तखत महीप तेरो,
दीप दीप दीपै दीपमालिका समान है ।

सवैया—भृगुनंद कुठार सी, वासव वज्र सी...।
त्रिपुरारी त्रिसूल सी, श्रीपति चक्रसी, 'बंक' कहै वड़वानल सी ।
नरसिंहनखाली सी, खेत में काली सी, सेस मुखानल की झलसी ।
तरवार तिहारिय मान महीपति है विकराल हलाहल सी ।
सारद, नारद पारद अंग सी, छीर तरंग सी, गंग की धार सी ।

संकर सैल सी, चंद्रिका फैल सी, सारस रैलसो, हंसकुमारसी।
'दास' प्रकासहिमाद्रि बिलाससी कुंदसी काँससी, मुक्तिभँडारसी।
कीरति हिन्दु-नरेस की राजति उज्वल चारु चमेली के हारसी।

इंद्र जिमि जंभ पर, बाड़व सु अंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुल राज है।
पोन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाह पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुमदंड पर, चीता मृग झुंड पर,
'भूषन' वितुंड पर जैसे मृगराज है।
तेज तिमि अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलेच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥
सक्र जिमि सैल पर, अर्क तम फैल पर,
बिघन की रैल पर लंबोदर लेखिये।
राम दसकन्ध पर, भीम जरासन्ध पर,
'भूषन' ज्यों सिंधु पर कुम्भज बिसेषिये।
हर ज्यों अनंग पर, गरुड़ भुजंग पर,
कौरव के अंग पर पारथ ज्यों देखिये।
बाज ज्यों विहंग पर, सिंह ज्यों मतंग पर,
म्लेच्छ चतुरंग पर सिवराज देखिये।

३—रशनोपमालंकार

दो० —*कथित प्रथम उपमेय जहँ, होत जात उपमान।*
ताहि कहैं रशनोपमा, जे जग सुकवि प्रधान॥

विवरण-कई एक उपमालंकारों की एक शृंखलाबद्ध श्रेणी को—जिसमें क्रमशः प्रथम कहा हुआ उपमेय उपमान होता जाता है—रशनोपमा कहते हैं। जैसे—

दो०—मति सी नति, नति सी विनति, विनती सी रति चारु।
रति सी गति, गति सी भगति, तो में पवनकुमारु॥

वंस सम बखत, बखत सम ऊँचो मन, मन सम कर, कर सम करी दान के।

सवैया

न्यारो न होत बफारो ज्यों धूम तें, धूम ज्यों जात घने घन में मिलि।
'दास' उसास मिलै जिमि पौन में, पौन ज्यों पैठत आँधिन में पिलि॥
कौन जुदो करे लोन ज्यों नीर में, नीर ज्यों छीर में जात खरो मिलि।
यों मति मेरी मिली मन मेरे सों, मो मन गो मनमोहन सों मिलि॥

दो०—वच सी माधुरि मूरती, मूरति सी कल कीति।
कीरति लौं सब जगत में, छाय रही तव नीति॥

पुनः-सुभ सरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ज्ञान।
सुगुन ज्ञान सम उद्यमहु उद्यम से फल जान॥

४—अनन्वयोपमा

दो०—जहाँ होय उपमेय को, उपमेयै उपमान।
तहाँ अनन्वय कहत हैं, जे जन परम सुजान॥

विवरण-जहाँ उपमान के अभाव के कारण एकही वस्तु उपमेय और उपमान दोनों का काम दे, वहाँ अनन्वयोपमालंकार होगा।

उ० १-लही न कतहुँ हारि हिय मानी।
इन सम ये उपमा उर आनी॥
उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोविद लहैं।
बल बिनय विद्या सील सोभा सिंधु इन सम यइ अहैं॥
मिली न और प्रभा रती, करी भारती दौर।
सुन्दर नन्दकिसोर से, सुन्दर नन्दकिसोर॥
निरवधि गुन निरुपम पुरुष, भरत भरत सम जानि।

५-स्वामि गुसाइहिं सरिस गुसाईं। मोहिं समान मैं स्वामि दुहाई
६-श्रीरघुनाथ प्रताप लौं भूपर श्रीरघुनाथ प्रताप की लाली।
७-मैथिली सी तिहुँ लोकन में मिली मैथिली की सुभ सुंदरताई।
८-राम से राम, सिया सी सिया, सिरमौर विरंचि बिचारि सँवारे।

५—उपमेयोपमा

दो०—उपमा लागै परस्पर सो उपमा उपमेय।

विवरण—जहाँ उपमेय के लिये केवल एक ही उपमान हो, तीसरी सदृश वस्तु का अभाव हो; वहाँ 'उपमेयोपमा' अलंकार कहा जायगा। जैसे—

१—वे तुम सम तुम उन सम स्वामी।

२-तो मुख सो ससि सोहत है बलि सोहत है ससि सो मुख तेरो।
३-भूपर भाऊ महापति को मन सो कर औ कर सो मन ऊँचो।
४-लक्खन राम कलाधर से औ कलाधर लक्खनराम सो सोहै॥
५-दो०-सुधा संत के बैन सम, बैन सुधा सम जान।
बैन खलन के बिषहि से, विष खल-बैन समान॥
सवैया-अंबरगंग सो हैं सरजू, सरजू सम गंग छटा नभ साजै।
यों 'लछिराम' सुदेव से सेवक सेवक से सुभदेव समाजै॥
सोहैं सुरेस से राम नरेस, सुरेसहु राम नरेस सो राजै।
औधपुरी अमरावती सी, अमरावती औधपुरी सी बिराजै॥

सूचना—ये ऊपर लिखे हुए चारों अलंकार उपमा ही के भिन्न-भिन्न भेद हैं। प्राचीन कवियों ने उपमा के और भी अनेक भेद माने हैं, पर उनमें कोई विशेष विलक्षणता नहीं है।

'उपमा' अलंकार ही कविता का प्राण और कवियों का पुष्ट आधार है। आगे के अनेक अलंकारों में भी 'उपमा' ही प्राणवत्

अंतर्हित रहेगी। इसलिये इनमें उपमेय और उपमान के लिये जो शब्द लिखे जायँगे वे केवल पर्यायमात्र होंगे। उन्हें यहीं समझ लेना चाहिये।

उपमेय = { वर्ण्य, प्रस्तुत   उपमान = { अवर्ण्य, अप्रस्तुत

६—ललितोपमा

दो०—जहँ समता को दुहुन की, लीलादिक पद होत।
ताहि कहत ललितोपमा, सकल कविन के गोत॥

विवरण—जहाँ उपमेय और उपमान की समता जनाने के लिये सम, समान, लौं, इव, तुल्य इत्यादि पद न लाकर ऐसे पद लाये जाते हैं जिनसे उपमेय और उपमान में बराबरी, मुकाबला, मित्रता, ईर्ष्या इत्यादि सूचक भाव प्रकट होता है उसे 'ललितोपमा' कहते हैं।

दो०—बहसत, निदरत, हँसत, अरु, छवि अनुहरत बखानि।
सत्रु, मित्र, अरु होड़ कर, लीलादिक पद जानि॥

विवरण—जहाँ, बहसत, हँसत, निदरत, छवि अनुहरत, शत्रु है, मित्र है, होड़ लगी है इत्यादि या इसी अर्थ के अन्य शब्द उपमेय और उपमान की बराबरी प्रकट करने के लिये आते हैं, वहाँ ललितोपमा समझना चाहिये। जैसे—

साह तनै सरजा सिवा की सभा जा मधि है,
मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है।
'भूषन' भनत जाके एक एक सिखर ते,
केते धौं नदी नद की रेल उतरति है।

जोन्ह को हँसति जोति हीरा मनि मंदिरन,
कंदरन मैं छबि कुहू की उछरति है।
ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामैं,
नखतावली सों बहस दिपावली करति है।

सवैया

उत स्याम घटा इत हैं अलकैं बकपाँति उतै इत मोती लरी।
उत दामिनी दंत चमंक इतै उत चाप इतै भ्रुव बंक धरी॥
उत चातक तो पीउ पीउ रटै बिसरै न इतै पिउ एक घरी।
उत बूंद अखंड इतै अँसुवा बरसा बिरहीनि तें होड़ परी॥

सूचना–इसी को केशवदास ने 'संकीर्णोपमा' कहा है और उदाहरण यों दिया है—बिधु कैसो बंधु, किधौं चोर हास्य रस को कि कुंदन कौ बादी किधौं मोतिन को मीत है॥...... किधौं केशोदास रामचन्द्र जू को गीत है।

यहाँ रामजी के यश की 'श्वेतता' दरसाने के लिये बिधु को बंधु, हास्यरस को चोर, कुंदन को बादी (मुद्दई) और मोती को मित्र कहा गया है। इसी प्रकार का कथन 'ललितोपमा' कहलाता है, क्योंकि ऐसे कथनों से एक प्रकार की समता ही प्रकट होती है।

७—प्रतीप *

सूचना—'प्रतीप' शब्द का अर्थ है 'उलटा'। अलंकार शास्त्र में इसका अर्थ लिया जाता है—'उपमा के अंगों का उलटफेर'। उपमा अलंकार में जिस तरह उपमेय को उपमान के समान कहते हैं, ठीक उसके प्रतिकूल इस अलंकार में उपमान को उपमेय के समान कहते हैं। ऐसा

* इस अलंकार को फारसी, अरबी, तथा उर्दू में 'तसबीह माकूस' कह सकते हैं।

करने से उपमेय का उत्कर्ष उपमालंकार की अपेक्षा कुछ और अधिक बढ़ जाता है। यही इस अलंकार का तात्पर्य है। प्राचीनों ने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं। जैसे—

(पहला प्रतीप)

दो०—जहँ प्रसिद्ध उपमान को, पलटि करिय उपमेय।
तासों प्रथम प्रतीप कवि, वर्णत बुद्धि अजेय॥

पायन से गुललाला जपादल पुंज बँधूक प्रभा बिथरे हैं।
हाथ से पल्लव नौल रसाल के लाल प्रभाव प्रकास करे हैं॥
लोचन की महिमा सी त्रिवेनी लखे 'लछिराम' त्रिताप हरे हैं।
मैथिली आनन से अरविंद कलाधर आरसी जानि परे हैं॥

सो०—तो पद से अनुमानि, अरुण अमल कोरे कमल।
याही ते सनमानि, अवतंसित मोहन करे॥

दो०—बिदा किये बटु बिनय करि, फिरे पाय मन काम।
उतरि नहाये जमुनजल, जो सरीर सम स्याम॥

इन उदाहरणों पर विचार करने से प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि पैर, हाथ, लोचन, मुख और शरीर (वा शरीर का रंग) जो उपमा अलंकार में उपमेय माने जाते, वे यहाँ उपमान हो गये हैं और गुललाला, जपादल, बंधूक, रसालपल्लव, त्रिवेणी, कमल और यमुनाजल जो उपमा में उपमान ठहराये जाते, यहाँ उपमेय हो गये हैं। यही 'उपमा' के अङ्गों का उलटफेर है

(दूसरा प्रतीप)

दो०—जहाँ होय उपमान सों, उपमेय को अमान।
तहँ दूसरो प्रतीप है, नव प्राचीन प्रमान॥

विवरण—उपमेय से उपमान को कुछ बढ़कर जताना। इस अलंकार में सूरदास का यह पद बहुत अच्छा है।

नंदनँदन के बिछुरे अँखियाँ उपमा जोग नहीं।
कंज खंज मृग मीन न होहीं कबिजन बृथा कहीं॥
कंज होति मुँदि जाति पलक मैं जामिनि होत जहीं।
खंज होति उड़ि जाति छिनक मैं प्रीतम जित तितहीं॥
मृग होतीं रहतीं निसिबासर चंदबदन ढिगहीं।
रूपसरोवर ते बिछुरे कहु जीवत मीन कहीं॥

बरवा—गरबु करौ रघुनन्दन जिन मन माँह।
देखौ आँखिन मूरति सिय कै छाँह॥

दो०—महाराज रघुराज जू कीजत कहा गुमान।
दंड कोप दल के धनी सरसिज तुमहिं समान।

बरवा—का घूँघुट मुख मूँदौ अबला नारि।
चंद सरंग पै सोहत यहि अनुहारि॥

(तीसरा प्रतीप)

दो०—जहँ बरनत उपमेय तें, कछु हीनो उपमान।
तहँ तीसरो प्रतीप है, कबिजन करो प्रमान॥

विवरण—जहाँ उपमेय की अपेक्षा उपमान में कुछ लघुता वर्णन की जाय।

श्री रघुबीर सिया छबि सामुहैं स्याम घटा बिजुरी पर फीकी।

दो०—करत गर्व तू कल्पतरु बड़ी सो तेरी भूल।
या प्रभु की नीकी नजर तक तेरे ही तूल॥

दो०—कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर समुझि परै कहु काहि॥

मान महीपति के मन आगे लगे लघु काँअर सो कनकाचल।

(चौथा प्रतीप)

दो०—सरवरि में उपमेय की जब न तुलै उपमान।
चौथो भेद प्रतीप को तहँ बरनै मतिमान॥

उ०—बहुरि बिचार कीन मनमाहीं। सीयबदन सम हिमकर नाहीं॥

दो०—तो मुख ऐसो पंकसुत अरु मयंक यह बात।
बरनै सदा असंक कवि बुद्धि रंक बिख्यात॥
तुव मुख के सम ह्वै सकत कहा बिचारो चंद।
पुनः—कोटि काम उपमा लघु सोऊ।

(पाँचवाँ प्रतीप)

दो०—उपमेय के मुकाबिले व्यर्थ होय उपमान।
पंचम भेद प्रतीप को ताहि कहत गुनवान॥

दो०—या भूषन के जानिये, बाचक कितक निकाम।
मंद, वृथा, कछु नहिं, कहा मिथ्या, निफल, गुलाम॥

दो०—अमिय झरत चहुँ ओर सों, नयन ताप हरि लेत।
राधाजू को बदन अस, चंद उदय केहि हेत॥

दो०—प्रभा करन तमगुनहरन, धरन सहसकर राजु।
तव प्रताप ही जगत में, कहा भानु सों काजु॥

दो०—जहँ राधा आनन उदित, निसिबासर सानंद।
तहाँ कहा अरबिंद है, कहा बापुरो चंद॥

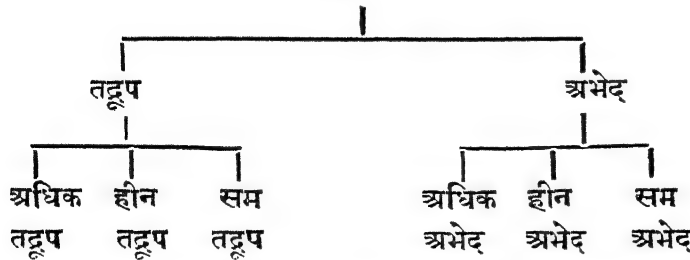
बसंततिलका—याको प्रताप यश लोक प्रकाश है ही।
हैं ये वृथा करत चित्त जबै जबै ही॥
धाता प्रभाकर निशाकर के तबै ही।
रेखा करे चहुँध मंडल व्याज ते ही॥

दो०—जब जब जसवंत तेज जस बिधना लेत जु देख।
व्यर्थ समुझि रबि-ससि करत, कुंडलि मिस परिवेख॥
पुनः—कल्पवृक्ष केहि काम को जब हैं नृप जसवंत।

८—रूपक *

दो०—उपमानरु उपमेय तें बाचक धर्म मिटाय।
एकै कै आरोपिये सो रूपक कबिराय॥
दो०—जो काहू के रूप इव रूप बनावै और।
रूपक ताही सों कहैं सबै सुकवि सिरमौर॥
कहुँ कहिये यह दूसरो कहुँ राखिये न भेद।
अधिक, हीन, सम त्रिबिध पुनि ते तद्रूप अभेद॥

विवरण—पूर्णोपमालंकार में से वाचक और धर्म को मिटाकर उपमेय पर ही उपमान का आरोप करें अर्थात् उपमेय और उपमान को एक ही मान लें, यही रूपक अलंकार होगा। इस अलंकार के पहले दो भेद—(१) तद्रूप और (२) अभेद हैं। फिर प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार—(१) अधिक, (२) हीन और (३) सम होते हैं। इस तरह इसके ६ प्रकार हो जाते हैं।



* नोट—अँगरेजी में इस अलंकार को मेटैफर (Metaphor) और फारसी तथा उर्दू में 'तलाजमा' कहते हैं।

१—तद्रूप रूपक

जहाँ उपमान को उपमेय रूप करके वर्णन करें वहाँ तद्रूप रूपक है। इसमें बहुधा अपर, दूसरा, अन्य इत्यादि शब्द वाचक होकर आते हैं।

(अधिक तद्रूप रूपक)

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ गुण बढ़कर हो तो भी तद्रूप ही कहें।

दो०—जश धुज वा धुज ते अधिक तीन लोक फहरात।
धर्म मित्र बड़ मित्र ते मरत जियत सँग जात॥

यहाँ यश को ध्वजा ही करके वर्णन किया है, और धर्म को मित्र ही करके, परन्तु यशरूपी ध्वजा में यह अधिक गुण कहा कि वह तीन लोकों में फहराता है (साधारण ध्वजा में यह गुण नहीं) और धर्मरूपी मित्र में यह अधिकता है कि वह मरने के अनंतर भी साथ देता है जो साधारण मित्र नहीं कर सकता।

पुनः—मुखससि वा ससि ते अधिक, उदित ज्योति दिनरात।

(हीन तद्रूप रूपक)

उपमेय में उपमान से कुछ गुण कम होने पर भी दोनों को एक रूप ठहरावें। उदाहरण—

दो०—अपर धनेस जनेस यह नहिं पुष्पक आसीन।
द्वितिय गनेस सुवेस सुचि सोहत सुंड विहीन॥
बिप्रन के मंदिरन तजि करत आँच सब ठौर।
भाउसिंह भूपाल को तेज तरनि यह और॥

बरवा—दुइ भुज के हरि रघुबर सुन्दर भेस।
एक जीभ के लछिमन दूसर सेस॥

दो०—भिरत फिरत जहँ तहँ कहो मानत नहिं बद्फैल।
यह आजन है दूसरो बिन बिषान को बैल॥
दो०—हौ समदृष्टी संभू तुम जग जाहर जसवंत।
हो ब्रह्मा मुख चारि बिन मरुपति विस्व बदंत॥
दो०—तुव अरिनारिन के लिये सुनु जसबंत महीप।
बन औषधियाँ होति हैं बिन कज्जल के दीप॥
साहि तनै सिवराज 'भूषन' सुजस तव,
बिगिर कलंक चंद उर आनियतु है।
पंचानन एक ही बदन गनि तोहि,
गजबदन गजानन बिना बखानियतु है॥
एक सीस ही सहससीस कला धरिबे को,
दोई दृग सों सहसदृग मानियतु है।
दोई कर सों सहसकर मानियत तोहिं,
दोई बाहु सों सहसबाहु जानियतु है॥

(सम तद्रूप रूपक)

नैन कमल ये ऐन हैं और कमल केहि काम।
स०—छाँह करैं छितिमंडल को सब ऊपर यों 'मतिराम' भये हैं।
पानिप को सरसाबत हैं सिगरे जग के मिटि ताप गये हैं॥
भूमि पुरंदर भाऊ के हाथ पयोदन ही के सुकाज ठये हैं।
पंथिम के पथ रोकिबे को नभ बारिदवृन्द बृथा उनये हैं॥
दो०—रच्यौ बिधाता दुहुन लै सिगरी सोभा साज।
तू सुन्दरि सचि दूसरी यह दूजो सुरराज॥
पुनः—अपर रमा ही मानियत तोहि साध्वी गुनवंति।

२—अभेद रूपक

उपमेय और उपमान की अभेदतासूचक रूपक को अभेद

रूपक कहते हैं। तद्रूप रूपक में अपर, दूसरो, और, अन्य अथवा भिन्नतासूचक कोई शब्द कहकर केवल तद्रूपता प्रकट की जाती है, जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है। इस अभेद रूपक में ऐसा नहीं किया जाता, वरन् उपमान को ठीक उपमेय का रूप ही मानकर वर्णन करते हैं।

(अधिक अभेद रूपक)

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिक गुण दिखलाकर एकरूपता स्थापित की जाय, वहाँ यह अलंकार होता है। यथा—

जंग में अंग कठोर महा मदनीर झरैं झरना सरसे हैं।
झूलन रंग घने 'मतिराम' महीरुह फूलि प्रभान फँसे हैं॥
सुन्दर सिंदुर मंडित कुंभन गैरिक शृंग उतंग लसे हैं।
भाऊ दीवान उदार अपार सजीव पहार करी बकसे हैं॥

यहाँ हाथी को पहाड़ माना है, पर इतना अधिक कहा है कि ये हाथी 'सजीव' पहाड़ हैं, (पहाड़ निर्जीव वस्तु है)।

पुनः-दो०-तुव मुख में अरु चंद में कछू न भेद लखाय।
एक बगैर कलंक के, तुव मुख जानो जाय॥

नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥
उदित सदा अथइहि कबहूँ ना। घटिहि न जगनभ दिन दिन दूना॥

रन बन घूमै तुव भुज लतिका पै चढ़ी,
कढ़ी म्यान बाँबी ते बिषम बिष भरी है।
जा अरि को डसै सो तो तजै प्रान ताही छिन,
गारडू अनेक हारे झारे ते न झरी है॥
भनत 'कबिंदराउ' बुद्ध अनिरुद्ध तनै,
जुद्धबीरता सौं एक तैं ही बस करी है।

तरल तिहारी तरवारिपन्नगी को कहूँ,
तंत्र है न मंत्र है न जंत्र न जरी है ॥

(हीन अभेद रूपक)

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ कमी दिखलाकर भी रूपक बाँधा जाय । यथा—

दो०—महा दानि जाचकन को भाऊ देत तुरंग ।
पच्छन बिगर बिहंग हैं सुंडन बिगर मतंग ॥
कलियुग सतयुग सो कियो खलदल सकल संहारि ।
भुवनभरनपोसनकरन द्वै भुजधर दनुजारि ॥
सब के देखत व्योमपथ गयो सिंधु के पार ।
पच्छिराज बिन पच्छ को बीर समीरकुमार ॥
पुनः—है राधे तू उरबसी, धरे मानुषी देह ।

(सम अभेद रूपक)

जहाँ उपमेय और उपमान की पूर्ण रूप से एकरूपता वर्णन की जाय । यथा—

रामकथा सुंदर करतारी । संसय-बिहग उड़ावनहारी ॥
कामना आठहु जाम फलै कलपद्रुम राम नरेस हमारे ।
दो०—नारि कुमुदिनी अवधसर रघुबरबिरह दिनेस ।
अस्त भये बिकसित भई निरखि राम राकेस ॥
संपति चकई भरत चक. मुनि आयसु खेलवार ।
तेहि निसि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनुसार ।

सूचना—वास्तव में सच्चा और शुद्ध रूपक यही है ।

विवरण—अर्थनिर्णय, न्यायशास्त्र और व्याकरण के अनुसार तो रूपक के यही छः भेद हैं जो ऊपर कहे गये हैं, परंतु वर्णनप्रणाली के अनुसार इन्हीं सब रूपकों के केवल तीन प्रकार

कहे जा सकते हैं अर्थात्—(१) सांग (२) निरंग और (३) परंपरित ।

(१ 'सांग' रूपक वह कहलाता है, जिसमें कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में करता है। जैसे—

पद—देखो माई सुंदरता को सागर।
बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर ॥१॥
तनु अतिस्याम अगाध अंबुनिधि कटि पटपीत तरंग।
चितवत चलत अधिक छबि उपजत भँवर परत सब अंग ॥२॥
नैन मीन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुतमाल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिये संग ॥३॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिन नख चंद।
मनु अडोल बारिधि में बिंबित राका उडुगन बृंद ॥४॥
बदन चंद्रमंडल की सोभा अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत ॥५॥
देखि सरूप सकल गोपी जन रहीं बिचारि बिचारि।
तदपि 'सूर' तरि सकी न सोभा रहीं प्रेम पचि हारि ॥६॥

यहाँ सूरदास ने श्रीकृष्ण की छवि में समुद्र का रूपक सांगोपांग बाँधा है। इसी प्रकार तुलसीदास ने 'विनयपत्रिका' में काशीपुरी के लिये कामधेनु का सांग रूपक बाँधा है, जिसका आरंभ यों है—"सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलि कासी"। तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' (रामायण) के बालकांड में मानससरोवर का रूपक, लंका-कांड में 'विजयरथ' का रूपक और उत्तरकांड में 'ज्ञानदीपक' तथा 'मानसरोग' का सांग रूपक बहुत ही अच्छा कहा है। पाठकों को समझ लेना चाहिये।

नंदनंदन वृंदाबनचंद ।
यदुकुल नभ तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद ॥१॥
जठर कुहूते बहिर बारिनिधि दिसि मधुपुरी स्वछंद ।
बसुदेव संभु सीस धरि आन गोकुल आनँदकंद ॥२॥
व्रज प्राची राका तिथि जसुमति सरस सरद रितु नंद ।
उडुगन सकल सखा संकर्षण तम दनुकुल जो निकंद ॥३॥
गोपी जन तँह धरि चकोर गति निरख मेटि पल द्वंद ।
'सूर' सुदेस कला षोड़स परिपूरण परमानंद ॥४॥

सूचना—इस 'सांगरूपक' को अँगरेजी में सस्टेंड मेटैफर (Sustaind metaphor) कहते हैं ।

सांग रूपक के पुनः दो प्रकार हैं—

(१) समस्तवस्तुविषयक और (२) एकदेशविवर्तित ।

१—समस्तवस्तुविषयक सांग रूपक के उदाहरण कई एक ऊपर लिख आये हैं । कुछ और लिखते हैं । यथा—

१—उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ॥
नृपन केरि आसा निसि नासी । बचन नखत अवलीन प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भये बिसोक कोक मुनि देवा । बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥

२—राम नाम नरकेसरि कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालहिं दलि सुरसाल ॥

३—वर्षा ऋतु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादौं मास ॥

२—एकदेशविवर्तित रूपक वह कहलाता है जिसमें कुछ अंगों का निरूपण किया जाता है और कुछ का नहीं । जैसे—

नाम पाहरू दिवसनिसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रिका प्रान जांहि केहि बाट॥

यहाँ नाम, ध्यान और लोचन का रूपक पहरू, कपाट और यंत्र (ताला) से किया गया है; किन्तु 'प्राण' का रूपक, जो कैदी (बंदी) से होना चाहता था, नहीं किया गया। अर्थकर्ता अपनी बुद्धि से लगा लेता है।

(२) निरंग रूपक वह कहलाता है जिसमें केवल उपमान के प्रधान गुण का आरोप उपमेय पर किया जाता है। जैसे—

दो०—अवसि चलिय बन राम पहँ भरत मंत्र भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहिं तुम अवलंबन दीन्ह॥

यहाँ शोक को समुद्ररूप से मान लिया है, उसके और अंग नहीं कहे गये। इसी प्रकार और भी जानो। यथा—

(१) तुलसीदास यह बिपति बागुरो तुमहिं सों बनै निबेरे।
यहाँ 'बिपति' पर 'बागुर' (जाल) का आरोप है।

(२) महामोह मृगजलसरिता महँ बोरयो बारहिं बार।
यहाँ 'मोह' पर 'मृगजलसरिता' का आरोप है।

(३) परंपरित रूपक वह कहलाता है जहाँ मुख्य रूपक का हेतु एक और ही रूपक होता है, अर्थात् मुख्य रूपक एक और (अंतर्गत) रूपक पर निर्भर होता है। जैसे—

सुनिय तासु ! गुनग्राम जासु नाम अघखगवधिक।

यहाँ श्रीराम के 'नाम' पर 'वधिक' होने का आरोप किया गया, परंतु ऐसा क्यों किया गया ? इसलिये कि पहले 'अघ' पर 'खग' होने का आरोप कर चुके हैं, अर्थात् राम के 'नाम' के 'वधिक' होने की सिद्धि के लिये पहले ही 'अघ' को 'खग' कह डाला है, नहीं तो राम के 'नाम' पर 'वधिक' का आरोप नहीं हो सकता। इसी प्रकार और जानो। यथा—

१–सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रबिकर बचन मम।
२–बदौं रघुपति करुनानिधान। जाते छूटै भवभेद ज्ञान।
क–रघुबंस कुमुद सुखप्रद निसेस। सेवित पदपंकज अज महेस।
ख–निज भक्तहृदय पाथोजभृंग। लावन्य बपुष अगनित अनंग।
ग–अति प्रबल मोह तम-मारतंड। अज्ञान-गहन पातक-प्रचंड।
घ–अभिमान-सिंधु कुंभज उदार। सुररंजन भंजन-भूमिभार।
ङ–रागादि–सर्पगन–पन्नगारि। कंदर्प-नाग मृगपति मुरारि।
च–भवजलधि-पोत चरनारबिंद। जानकीरमन आनन्दकंद।
छ–हनुमंत–प्रेम–बापी–मराल। निष्काम कामधुक गो दयाल।
ज–त्रैलोक्यतिलक गुनगहन राम। कह 'तुलसिदास' बिस्राम धाम।

इस पद में क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, सब में परंपरित रूपक है।

पुनः—

(क) मोह महा-घन-पटल-प्रभंजन। संसय-बिपिन-अनल सुररंजन।
अगुन सगुन गुनमंदिर सुंदर। भ्रमतम-प्रबल-प्रताप-दिवाकर।
(ख) काम-क्रोध-मद-गज पंचानन। बसहु निरंतन जन-मन-कानन।
बिषय-मनोरथ-पुंज-कंज-बन। प्रबल तुषार-उदार पारमन।

यह परंपरित रूपक कभी-कभी श्लेष से भी कहा जाता है। जैसे—

(१) संकर-मानस-राजमराला।

यहाँ जबतक 'मानस' शब्द में श्लेष न मानें और उसके दो अर्थ (१) मन तथा (२) मानससरोवर न लें तब तक रूपक का चमत्कार नहीं भासेगा।

(२) अंगद तुहीं बालिकर बालक। उपजे बंस अनल कुल घालक। इसमें जबतक 'वंश' शब्द के श्लेष से दो अर्थ (१) बाँस और (२) कुल न लिये जायँ, तब तक कोई चमत्कार नहीं भासता।

सूचना—कभी-कभी कविलोग 'निरंग' रूपक को मालाकार भी वर्णन करते हैं। यथा—

विधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरिपद पंकज प्रताप की लहर है।
कहै 'पद्माकर' गिरीस सीस मंडल की,
मुंडन की माल ततकाल अघहर है।
भूपति भगीरथ के रथ की सुपुन्यपथ,
जन्हुजपयोगफल फैल की फहर है।
छेम की छहर गंगा रावरी लहर,
कलिकाल को कहर जगजाल को जहर है॥

यहाँ गंगाजी की 'लहर' पर अनेक आरोप हैं और वे सब निरंग हैं।

९—उल्लेख*

परिभाषा—किसी निमित्त से एक व्यक्ति का बहु विधि वर्णन 'उल्लेख' कहलाता है। इसके दो भेद हैं—

(१) एकहि बहु बहु विधि लखैं,
(२) इकहि बरनि बहु रीति।

विवरण—(१) एक ही व्यक्ति को बहुत-से भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न विधि से लखें, कहें वा मानें, वहाँ प्रथम उल्लेख होता है। यथा—

सवैया—दुर्जन भानु प्रचण्ड लखैं नृप सेवक ते ससि पूरन जानैं।
मूरतिवंत मनोज कहैं वनिता बसि होतरु रीझैं सुजानैं॥

* इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'तन्सीकुलसिफ़ात' कहते हैं।

मानैं कवींद्र सुरद्रुम सोरु गिरापति कै सब पंडित मानैं।
आवत देखिकै रामनरिंदको भाँतिनि भाँतिनि रूप बखानैं ॥

पुनः—

जिनकी रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखि तिन तैसी ॥
देखहिं भूप महा रनधीरा। मनहु बीररस धरे सरीरा ॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहिं निहारी। मनहु भयानक मूरति भारी ॥
रहे असुर छल जो नृप वेषा। तिन प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरबासिन देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचनसुखदाई ॥
बिदुषन प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाय बखानी ॥
योगिन परम तत्वमय भासा। सांत सुद्ध मन सहज प्रकासा ॥
हरिभगतन देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव सम सब सुखदाता ॥
रामहिं चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहिं कथनीया ॥
जेहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देख्यो कोसलराऊ ॥

(२) एक ही व्यक्ति को एक ही व्यक्ति बहु विधि वर्णन करे। यथा—

दो०—साधुन को सुखदानि हैं दुर्जनगन दुखदानि।
बैरिन बिक्रम हानिप्रद राम तिहारे पानि ॥

सवैया—सत्य की वेर युधिष्ठिर हैं बल भीम है युद्ध धरा महँ गाजै।
बान बिलास मैं जानो विजै नकुलै इव बाजिन की गति साजै।
आगम जानिवे की सहदेव लखे सब के मन भावते छाजै।
पोषकता जग की हरि है लखि 'कूरमराम' नरिंद्र बिराजै।

कवित्त—सारमाला सत्य की बिचारमाला वेदन की,
भारी भागमाला है भगीरथ नरेस की।

तपमाला जह्नु की सु जपमाला जोगिन की,
आछी आपमाला या अनादि ब्रह्मवेस की ॥
कहै 'पद्माकर' प्रमानमाला पुन्यन की,
गंगाजू की धारा मनिमाला है धनेस की।
ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की,
ध्यानमाला ध्रुव मौलिमाला है महेस की।
पुनः--सब गुन भरा ठकुरवा मोर। अपनै पहरू अपनै चोर॥

१०—संदेह

दो०—बहुविधि वर्णत वर्ण्य को नियत न तथ्य-अतथ्य।
अलंकार संदेह तहँ बरनत हैं मतिपथ्य॥

विवरण--जहाँ किसी वस्तु को देखकर संशय बना ही रहे, निश्चित न हो। 'भ्रांति' में एक वस्तु पर निश्चय जम जाता है, संदेह में किसी पर नहीं जमता। धौं, किधौं, कि, की, या, अथवा इत्यादि संदेहसूचक शब्द इस अलंकार के वाचक हैं। जैसे--

की तुम तीन देव महँ कोऊ। नरनारायन की तुम दोऊ॥
की तुम हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम रामदीन अनुरागी। आये मोहि करन बड़भागी॥
कवित्त--पाय अनुसासन दुसासन कै कोप धायो,
द्रुपदसुता को चीर गहे भीर भारी है।
भीषम करन द्रोन बैठे ब्रतधारी तहाँ,
कामिनी की ओर काहू नेक ना निहारी है।
सुनिकै पुकार धायो द्वारका ते यदुराई,
बाढ़त दुकूल खैंचे भुजबल हारी है।

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है।
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही कि सारी है।

ये कौन कहाँ ये आये।

मुनिसुत किधौं भूपबालक किधौं ब्रह्म जीव जग जाये।
रूपजलधि के रतन, सुछबि तियलोचन ललित ललाये।
किधौं रबिसुवन, मदन ऋतुपति किधौं, हरिहर बेष बनाये।
किधौं आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरे पाये।

यह अलंकार फारसी, अरबी तथा उर्दू के 'तजाहुलआरिफ' नामक अलंकार से मिलता-जुलता है।

११—अपह्नुति

दो०—मिथ्या कीजे सत्य का सत्य जु मिथ्या होत।
आपह्नुति षट भेद को बरनत हैं कवि गोत॥
सुद्ध हेतु परजस्त, भ्रम, छेका, कैतव देखि।
'ना' बाचक है पाँच को, कैतव की 'मिस' लेखि॥

विवरण—'अपह्नुति' शब्द का अर्थ है 'छिपाना'। इसलिये इस अलंकार में किसी बात का छिपाना और कोई अन्य बात कहके दूसरे का संतोष कर देना यही वर्णन रहता है। इसके ६ भेद हैं जिनमें से प्रथम पाँच में निषेधवाची 'न' 'नहीं' का प्रयोग अनिवार्य है और अंतिम 'कैतवापह्नुति' में 'मिस' शब्द का प्रयोग अवश्य ही होता है। बस इन्हीं वाचक शब्दों से इस अलंकार की ठीक पहचान हो जाती है।

१—शुद्धापह्नुति

दो०—दुरै सत्य उपमेय को प्रगट करै उपमान।
शुद्धापह्नुति कहैं तेहि जे कबिंद मतिमान ॥

विवरण—उपमेय को असत्य ठहराकर उपमान का स्थापन किया जाय, वही शुद्धापह्नुति अलंकार है। जैसे—

मैं जु कहा रघुवीर कृपाला। बंधु न होय मोर यह काला।

यहाँ सत्य बंधुत्व को असत्य ठहराकर उपमानरूपी असत्य कालत्व का स्थापन है।

पुनः—पहिरे स्याम न पीतपट घन में बिज्जु बिलास।

पुनः—सारद ससि नहिं सुंदरी उदयो जस जसवंत।
अंक न संग रही जु लगि भिच्छुक जन की पंत।

पुनः—नहिं सुधांशु यह है सखी नभगंगा को कंज।
ये न घने घन कुंजरमाल है, या चपला न दिपै तरवारी।
गर्जनि नाहिं नगारे बजैं, बकपाँति नहीं गजदंत निहारी।
ये न मयूर जो बोलत हैं बिरदावलि बंदि बदै जस भारी।
या नहिं पावस काल अली यह तो सति है अमरेस सवारी।

२—हेत्वापह्नुति

दो०—सुद्धापह्नुति में जहाँ कहिये हेतु बनाय।
हेतु अपह्नुति कहत हैं ताहि सकल कबिराय।

विवरण—शुद्धापह्नुति में जब कोई कारण भी बतला दिया जाय, तब वही हेत्वापह्नुति हो जायगी। जैसे—

दो०—रात माँझ रबि होत नहिं, ससि नहिं तीव्र सु लाग।
उठो लखन अवलोकिये, बारिधि सो बड़वाग ॥

यहाँ चंद्रमा को देखकर रामचंद्र कहते हैं—हे लक्ष्मण, देखो

तो यह चंद्रमा नहीं है, क्योंकि इसकी किरण तीव्र जान पड़ती है और रात्रि में सूर्य का होना असम्भव है इससे यह सूर्य भी नहीं हैं, अतः यह समुद्र से निकलती हुई बड़वाग्नि ही है।

यदि केवल इतना ही कहा जाता कि "यह चंद्रमा नहीं है, बड़वाग्नि है" तो शुद्धापह्नुति होती। चंद्रमा के निषेध का कारण "तीव्र लगता है" कहा भी गया है, अतः हेत्वापह्नुति है। इसी प्रकार 'सूर्य नहीं, इसका कारण भी कि 'रात्रि है' बतलाया गया है। इसी प्रकार और भी समझना। यथा—

सेत सरीर हिये विष स्यामकला फन री मनि जानु जुन्हाई।
जीभ मरीचि दसौ दिसि फैलती काटत जाहि बियोगन ताई।
सीस ते पूँछलौं गात गरयो पै डँसे बिन ताहि परैं न कलाई।
सेस के गोत के ऐसहि होत हैं चंद नहीं या फनिंद है भाई।

दो०—सिव सरजा के कर लसै सो न होय किरपान।
भुज भुजगेस भुजंगिनी भखति पौन अरि प्रान॥

३—पर्यस्तापह्नुति

दो०—धर्म और में राखिये धर्मी साँच छिपाय।
पर्यस्तापह्नुति कहैं ताहि सकल कविराय॥

विवरण—(पर्यस्त=फेंका हुआ) किसी वस्तु में उसके सच्चे धर्म का निषेध इसलिये किया जाय कि वह धर्म किसी दूसरी वस्तु में आरोपित करना है। यथा—

है न सुधा यह है सुधा संगति साधु समाज।

यहाँ 'सुधा' में सुधात्व (अमरत्वगुण) का निषेध इसलिये किया गया कि उसका धर्म साधुसमाज की संगति में स्थापित करना मंजूर है।

पुनः—नहीं सक्र सुरपति अहैं सुरपति नंदकुमार।
रतनाकर सागर न है मथुरा नगर बजार॥
यह न चाँदनी चाँदनी मृदु विहँसनि नँदलाल।
पुनः—मीन में नहिं प्रीति सजनी पंक में नहिं प्रेम।
एक मति गति एक व्रत यह भरत ही में नेम॥
सो०—कालकूट बिष नाहिं, बिष है केवल इंदिरा।
हर जागत छकि वाहि, यहि सँग हरि नींद न तजत॥

सूचना—प्रायः यह देखा जाता है कि इस अलंकार के उदाहरणों में जिस वस्तु के सच्चे धर्म को छिपाना होता है उसे दो बार लाना पड़ता है। उदाहरणों में देखो कि सुधा, सुरपति, चाँदनी और विष शब्द दो-दो बार आये हैं।

४—भ्रांत्यपह्नुति

दो०—*भ्रम संका मन और के कछु कारन ते होय।*
दूरि करै कहि सत्य सों भ्रांत्यापह्नुति सोय॥

यथा—कह प्रभु हँसि जनि हृदय डराहू। लूक न अशनि न केतु न राहू॥
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥
दो०—बेसर मोती दुति झलक परी अधर पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय क्यों पट पोंछो जाय॥
दो०—आली लाली लखि डरपि जनि टेरहु नँदलाल।
फूले सघन पलास ये नहिं दावानल ज्वाल॥

५—छेकापह्नुति

दो०—*संका नासै और की साँची बात दुराय।*
छेकापह्नुति कहत हैं ताहि कबिन के राय॥

विवरण—(छेक=चतुराई) यह अलंकार भ्रांत्यपह्नुति का

ठीक विरोधी है। उसमें सत्य कहकर भ्रम दूर किया जाता है और इसमें सत्य को छिपाकर असत्य बातें कहकर शंका दूर करने की चेष्टा की जाती है (चाहे वह शंका दूर हो वा न हो)। जैसे—

साँवरो सलोना गात पीतपट सोहत सो,
अंबुज से आनन पै परै छवि ढरकी।
मंत्र ऐसी जंत्र ऐसी तंत्र सी तरकि परै,
हँसनि चलनि चितवनि त्यों सुघर की।
'गोकुल' कहत बन कुंजन को बासी लखे,
हाँसी की करतु है री काम कलाधर की।
एतने में बोली और मिले हरि सुखदानी ?
नाहीं मैं कहानी कही रामरघुवर की।

यहाँ कोई गोपी कृष्ण की छवि का वर्णन कर रही थी, एक अन्य स्त्री ने आकर पूछा कि क्या तुझे कृष्ण मिले थे, तब वह सत्य बात कृष्णदर्शन को छिपाकर कहती है कि नहीं, मैं तो राम की कथा कह रही थी।

पुनः-कछु न परीक्षा लीन्ह गुसाईं। कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं।

सूचना—'मुकरी' इसी अलंकार में कही जाती है जैसे—

१-अर्द्धनिशा वह आयो भौन। सुन्दरता बरनै कहि कौन।
निरखत ही मन भयो अनंद। क्यों सखि साजन नहिं सखि चंद॥
२-सोभा सदा बढ़ावन हारा। आँखिन ते छिन करौं न न्यारा।
आठ पहर मेरो मनरंजन। क्यों सखि साजन ? नहिं सखि अंजन॥

६—कैतवापह्नुति

दो०—*मिसब्याजादिक शब्द दै, कहैं आन को आन।*
ताहि कैतवापह्नुति, भूषन कहैं सुजान॥ यथा—

पठै मोह मिस खगपति तोहीं। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोहीं॥
लखी नरेस बात यह साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥
लालिमा श्री तरवानि के तेज में सारदा लौं सुखमा की निसेनी।
नूपुर नीलमनीन जड़े जमुना जगैं जौहर में सुख देनी॥
यों 'लछिराम' छटा नख नौल तरंगिनी गंगप्रभा फल पैनी।
मैथिली के चरनांबुज व्याज लसै मिथिलामगु मंजु त्रिबेनी।

सूचना—इस अलंकार में मिस, छल, व्याज, बहाना इत्यादि शब्दों का लाना आवश्यक है। जिस वस्तु के बहाने से कथन की जाती है इन दोनों में कारण और कार्य का-सा अथवा उपमेय और उपमान का-सा सम्बंध भी होना जरूरी है। 'पर्यायोक्ति' से इसका अंतर समझ लेना चाहिये। पर्यायोक्ति अलंकार की सूचना में देखिये।

१२—उत्प्रेक्षा

सूचना—उत्प्रेक्षा (उत्+प्र+ईक्षण) शब्द का अर्थ है "बल पूर्वक प्रधानता से देखना"। इस अलंकार का मुख्य तात्पर्य किसी उपमेय का कोई उपमान कल्पनाशक्ति द्वारा कल्पित कर लेना है। कल्पना प्रतिभा के बल से ही हो सकती है। जितनी ही शक्तिवती प्रतिभा होगी उतनी ही उत्तम कल्पना हो सकेगी, इसीलिये इस अलंकार को उत्प्रेक्षा कहते हैं। अतः उत्प्रेक्षा की परिभाषा हुई—

दो०—बल सों जहाँ प्रधानता करि देखिय उपमान।
उत्प्रेक्षा भूषण तहाँ कहत सुकवि मतिमान॥

वाचक—मनु, जनु, मानो, जानो, निश्चय, प्रायः, बहुधा, इव, खलु, इत्यादि शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं।

उत्प्रेक्षालंकार तीन प्रकार का होता है—(१) वस्तूत्प्रेक्षा, (२) हेतूत्प्रेक्षा और (३) फलोत्प्रेक्षा।

१—वस्तूत्प्रेक्षा

किसी वस्तु के अनुरूप बलपूर्वक कोई उपमान कल्पित किया जाय, वहाँ वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार कहा जायगा। इसके दो प्रकार हैं—(क) उक्तविषया—जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय पहले कहा जाय, और तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय। (ख) अनुक्तविषया—जहाँ विषय न कहा जाय, केवल कल्पना की जाय।

(क) उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

दो०—सोहत ओढ़े पीतपट स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर आतप पर्‌यो प्रभात॥

यहाँ "पीताम्बर ओढ़े कृष्ण का श्याम तनु" उत्प्रेक्षा का विषय है सो पहले कह दिया गया है, तब उत्प्रेक्षा की गई कि वह तनु कैसा है मानो नीलमणि का पर्वत है जिसपर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड़ रही हों।

यहाँ मुख्य तात्पर्य तो कृष्ण के तनु के वर्णन से है, परंतु कवि अपनी कल्पना से पाठक का ध्यान बलपूर्वक खींचकर एक नीलमणि के पर्वत पर प्रातःकाल की सूर्यकिरणों के पड़ने के दृश्य की ओर लिये जाता है। इस दृश्य के दिखलाने से कवि का तात्पर्य यह है कि पाठक-दर्शक कृष्ण के तनु की उत्कृष्ट शोभा का अनुमान कर सकेगा। इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये। कुछ और उदाहरण देखिये—

दो॰—लता भवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलदपटल बिलगाइ॥

संभु सरासन तोरयो मृनाल सो भाल बिसाल प्रताप सोहावै।
त्यों 'लछिराम' स्वयंबर में मिथिलेस अनंद अमात न छावै॥

राम गरे जयमाल के देत सु मैथिली यों समता सरसावै।
मानो रमा रतनाकर में रतनावलि श्रीहरि को पहिरावै।
दो०—सखि सोहत गोपाल के उर गुंजन की माल।
बाहर लसत मनो पिये दावानल की ज्वाल ॥

सूचना—गोस्वामी तुलसीदासजी तथा कविशिरोमणि सूरदासजी ने रामजी तथा कृष्णजी की बालछवि के वर्णन में इस अलंकार का बहुत अधिक और बहुत उत्तम प्रयोग किया है। जैसे—

१—लोचन नील सरोज से भ्रू पर मसिबिंद बिराज।
जनु बिधुमुख छबि अमी को रक्षक राखे रसराज ॥

२-सिसु सुभाव सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लवलाये,
मनहु सुभग जुग भुजँग जलजभरि लेत सुधा ससि सों सचु पाये।
३-बंधुक-सुमन अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिन्ह बनि आये।
नूपुर जनु मुनिवर कलहंसन रचे नीड़ दै बाँह बसाये।
४-भाल बिसाल ललित लटकन बर बालदसा के चिकुर सुहाये।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहिं मिलन तम के गन आये।
५-गजमनिमाल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई।
जनु उड़गन मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई ॥
६-मंजु-मेचक मृदुल तनु अनुहरत भूषन भरनि।
जनु सुभग शृंगार सिसुतरु फल्यो अद्भुत फरनि ॥

७-दो०-'पूरन' जमुना नीर पर यों आतप छबि होति।
मानहु कृष्ण सरीर पर पीतपटी की जोति ॥

इन सब उदाहरणों में उत्प्रेक्षा के विषय पहले कह दिये गये हैं तब उत्प्रेक्षाएँ की गई हैं, इसलिये ये उदाहरण उक्तविषया के हैं।

(ख) अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का विषय कथन न करके केवल उत्प्रेक्षा की जाय। जैसे-१-अंजन बरसत गगन यह मानो अथये भानु।

जहाँ सूर्यास्त के अनन्तर "अंधकार का फैलना" जो उत्प्रेक्षा का विषय है वह पहले नहीं कहा गया, परंतु उत्प्रेक्षा की गई है कि मानो सूर्यास्त के अनंतर यह आकाश काजल बरसाता है। ऐसे ही कथन को अनुक्तविषया जानो।

२-उदित सुधाधर करत जनु सुधामयी बसुधाहि।

यहाँ चन्द्रोदय के अनन्तर जो "चाँदनी फैलती है" वही इसका विषय है, सो कवि ने कहा नहीं। उत्प्रेक्षा यह की कि चंद्रमा उदित होकर मानो समस्त धरातल को सुधामय कर देता है (सुधा का रंग सफ़ेद माना गया है)।

३—सरद ससी बरसत मनो घन घनसार अमन्द।

यहाँ भी चाँदनी का प्रकाश जो उत्प्रेक्षा का विषय है, वह नहीं कहा गया, उत्प्रेक्षा यह की गई है कि मानो शरदऋतु का चन्द्रमा बहुत-सा सफ़ेद कपूर बरसाता है। चाँदनी की तरह कपूर का रंग भी श्वेत ही होता है।

४-मोर लौं मञ्जु नचैं धरनी पर मण्डित फेन लगाम उमा हैं।
कान के बीच लसै कलँगी फिरीं त्योर तिरीछी अतूल अदा हैं॥
काम कबूतर लौं 'लछिराम' छलैं यों अटेरन की परमा हैं।
बाजी बली रघुबंसिन के मनौ सूरज के रथ चूमन चाहैं॥

इसमें श्रीरामजी की बारात के घोड़ों का वर्णन है। उनके तन की छवि का वर्णन करके कवि कहता है कि "वे घोड़े मानो सूर्य का रथ चूमना चाहते हैं" अर्थात् उछलने में बहुत ऊँचे तक उछलते हैं, परन्तु उनकी 'उछाल'—जो इस उत्प्रेक्षा का मुख्य

विषय' है—कवि ने कही ही नहीं। इससे अनुक्तविषया जानो। इसी प्रकार और भी समझ लो।

बरसै जनु काजल गगन तम लिपटत सब गात।
दीठि नीच सेवा सरिस बिफल भई सी जात॥

सूचना—उपमा में दो वस्तुओं की समता वस्तुतः दिखलाई जाती है। उत्प्रेक्षा में केवल उस समता का संभव संशयरूप से कहा जाता है।

२—हेतूत्प्रेक्षा

अहेतु को हेतु मानकर उत्प्रेक्षा की जाय, वहाँ हेतूत्प्रेक्षा समझो। इसके भी दो भेद हैं—

(१) सिद्धास्पद अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

(२) असिद्धास्पद अर्थात् उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध न हो (असंभव हो)

(१) सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

१—मनो कठिन आँगन चली ताते राते पाँय।

सुकुमार स्त्रियों के चरणों में ललाई स्वाभाविक ही होती है, परन्तु कवि उसका हेतु कल्पित करता है कि मानो कठिन आँगन में चलने से वह ललाई आ गई है।

स्त्रियाँ आँगन में चलती ही हैं। यह तो सिद्ध आधार है। अहेतु में हेतु की कल्पना की गई है। यही अलङ्कारता है।

२—रवि अभाव लखि रैनि में दिन लखि चंद बिहीन।
सतत उदित यहि हेतु जनु जस प्रताप भुवि कीन॥

यहाँ भी रात में सूर्य का अभाव और दिन में चन्द्रमा का अभाव सिद्ध आधार है, पर इन्हीं कारणों से कोई राजा पृथ्वी

भर में अपना यश और प्रताप नहीं फैलाता (उसका कारण कुछ और ही होता है)।

घोर निरधनता सुदामा घर बास कीन्हों,
दारुन कलेश दै दै दीन को सतायो है।
संमति लै बाम की सिधायो द्विज स्याम पास,
भेंट करि तंदुल अखंड धन पायो है।
'पूरन' जु मानो भई द्वारका गया की पुरी,
जाय बिप्र जामैं मनमानो फल पायो है।
दारिद पिशाच मानि आखत निमंत्रण को,
संग जाय तरिगो न फेरि भौन आयो है।

'गया' में तर जाना सिद्धास्पद हेतु है। दरिद्ररूपी पिशाच के लौटकर न आने का वही हेतु कहा गया है।

(२) असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा

जहाँ उत्प्रेक्षा का कथित हेतु असंभव हो। जैसे--

१-मुख सम नहिं यातें मनो चंदहिं छाया छाय।

राधिका के मुख के समान नहीं है, इससे मानों चन्द्रमा में छाया (काला दाग) छाई हुई है। यहाँ भी अहेतु को हेतु ठहराया है, अतएव असिद्ध आधार है।

२-पूस दिनन में ह्वै रह्यो अगिन कोन मैं भानु।
मैं जानो जाड़ो बली ते वह डरै निदानु॥

सूर्य का जाड़े से डरना असिद्ध आधार है। और डर के कारण सूर्य पूस में अग्निकोण में (जाड़े से डरकर अग्नि तापने के लिये) चला आता है, यह कारण ठीक नहीं।

३--तुव चख निरखि लजाय मनु किय बनबास मृगीन।
कुबलय रहत मलीन दिन रहै पैठि जल मीन॥

नेत्रों से मृगियों, कुमुदपुष्पों तथा मीनों का लजाना, असिद्ध आधार है, और इसी लज्जा के कारण मृगी वन में रहने लगीं। कुवलय (कुईं के फूल) दिन में मलिन रहते हैं, और मछलियाँ पानी में डूबी रहती हैं, ये बातें ठीक नहीं।

४-मोर मुकुट की चंद्रकनि, यों राजत नंदनंद।
मनु ससिसेखर के अकस, किय सेखर सत चंद॥

५-दो०—भाल लाल बेंदी ललन आखत रहे बिराजि।
इंदु कला कुज में बसी मनहु राहु भय भाजि॥

६-भुजन भुजँग सरोज नैनन बदन बिधु जीत्यो लरनि।
बसे कुहरन सलिल नभ उपमा दूरी डरनि॥

यहाँ "राम के भुजों से हारकर सर्प बिलों में रहने लगे, नेत्रों से हारकर कमल पानी में जा डूबे और मुख से हारकर चन्द्रमा आकाश में जा बसा और अन्य उपमाएँ भी डरकर छिप रहीं" ऐसा कहा गया है।

इन उपमानों का हार जाना वा डर जाना 'असिद्ध आधार' है और उपमानों के वहाँ-वहाँ रहने का कारण जो कल्पित किया गया है वह ठीक नहीं है। इसी से 'असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा है। पुनः—

उपमा हरि तन देखि लजाने।
कोउ जल में कोउ बनहि रहे दुरि कोऊ गगन उड़ाने॥
मुख देखत ससि गयो अंबर को तड़ित दसन छवि हेरी।
मीन कमल कर चरन नयन डर जल मों कियो बसेरो॥
भुजा देखि अहिराज लजाने बिबरनि पैठे धाय।
कटि निरखत केहरि डरि मानो बन बिच रह्यो दुराय॥

३—फलोत्प्रेक्षा

अफल को फल मानने की उत्प्रेक्षा करना, फलोत्प्रेक्षा है।

इसके भी दो भेद हैं—

१-सिद्धास्पद-जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार सिद्ध हो (संभव हो)।

२-असिद्धास्पद—जिसकी उत्प्रेक्षा का आधार असिद्ध हो (असंभव हो)

१—सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा

१—दो०—मधुप निकारन के लिये मानो रुके निहारि।
दिनकर निज कर देत है सतदल दलनि उघारि॥

सूर्योदय से कमलों का खिलना सिद्ध आधार है, परन्तु कवि कल्पना करता है कि मानों रात भर बंद रहे हुए भौंरों को कैद से छुड़ाने के लिये सूर्य कमलों को अपने करों (किरणों) से खोल देता है। सूर्य का कमलों को खिलाना इसलिये नहीं होता कि उसमें बंद रहे हुए भौंरे बंद से छूट जायँ, वरन् वह स्वयं सिद्ध विषय है। भौंरों का कैद से छूटना यह अफल है उसे ही फल कल्पित किया है, अतः फलोत्प्रेक्षा है।

२—दुवन सदन सबके बदन, सिव सिव आठो जाम।
निज बचिवे को जपत जनु, तुरकौ हर को नाम॥

शिव-शिव कहने से मनुष्य संकटों से बच सकता है, यह (हिन्दूधर्मानुसार) सिद्ध आधार है। परन्तु मुसलमान लोग इस फल प्राप्ति के लिये शिव-शिव (शिवाजी का नाम) नहीं कहते थे, वरन् डर से बहुधा उनकी चर्चा किया करते थे, उस चर्चा में उनका नाम बार-बार लेना पड़ता था।

मौज भयो मिथिलापुर में चतुरंग चमू सजि आई बरात हैं।
त्यों उछलें तें जवाहिर की लरैं टूटैं तुरंगन के लहरात हैं॥

लक्खनराम को यों दसरत्थ लिये निजगोदन मोद अमात हैं।
ताप मिटाइबे के हित मानो पपीहरा स्वाती की बूँद नहात हैं ॥

२—असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा

१—तो पद समता को कमल जल सेवत इक पाँय।

कमल स्वतः जल में रहता है, राधिका के चरणों की समता-रूपी फल की प्राप्ति के लिये नहीं। जड़ कमल में समता की इच्छा का होना असिद्ध आधार है। इसलिये यहाँ असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है।

२—दमयंती-कचभार प्रभा से पिच्छभार हतप्रभा निहार।
कार्तिकेय की सेवा करता है मयूर खलु संयम धार ॥

यहाँ मयूर में दमयन्ती के बालों की शोभा की समताप्राप्ति-रूपी फल की इच्छा का होना असिद्ध आधार है (सर्वथा असम्भव है) और यह कहना कि उसी फल की प्राप्ति के लिये मयूर कार्तिकेय की सेवा करता है, अफल को फल कल्पित करना है। यही असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा है। इसमें खलु (निश्चय) उत्प्रेक्षा का वाचक है।

बारि में बूड़ि परे रवि को सरि पंकज पायन की गहिबे को।
बास उपास करैं बन में कटि की सरि सिंहनीयो चहिबे को ॥
... ...
रोज अन्हात है छीरधि में ससि तो मुख की समता लहिबे को ॥

ऊपर जितने उदाहरण दिये गये हैं उन सबमें उत्प्रेक्षा-वाचक शब्द मानो, जानो, खलु, मनु, जनु, इव, ध्रुव, इत्यादि मौजूद हैं। परन्तु कहीं-कहीं विना वाचक शब्द के भी उत्प्रेक्षा की जाती है। ऐसी उत्प्रेक्षा गम्योत्प्रेक्षा, गुप्तोत्प्रेक्षा वा ललितोत्प्रेक्षा कही जाती है।

सूचना—फलोत्प्रेक्षा और हेतूत्प्रेक्षा की पहचान करना विद्यार्थियों के लिये तनिक कठिन बात है। इसकी जाँच के लिये सर्वप्रथम 'क्रिया' को जाँचो। यदि क्रिया किसी हेतु से कही गई जान पड़े तो हेतूत्प्रेक्षा समझो और यदि उस क्रिया से किसी फल की इच्छा प्रकट हो तो फलोत्प्रेक्षा समझो। नीचे लिखे उदाहरणों पर विचार करो—

१—राधिकाजी के अधर और नासिका की छवि अनूप है, मानो बिंबाफल को देखकर लालचवश आकर शुक बैठा हो। (सिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

२—राधिकाजी के अधर और नासिका की छवि अनूप है, मानो बिंबाफल का स्वाद लेने के लिये शुक चोंच मारना चाहता है। (सिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

३—श्रम से पसीने की बूँदें लटों द्वारा मुख पर गिर रही हैं, मानो चंद्र को राहु का सताया हुआ समझकर नागवृंद उसपर अमृत बरसा रहे हैं (असिद्धास्पद हेतूत्प्रेक्षा)

४—मानो राहु की युद्धजनित पीड़ा दूर करने के लिये नागवृंद चंद्र पर अमृत बरसा रहे हैं। (असिद्धास्पद फलोत्प्रेक्षा)

१३—अतिशयोक्ति *

दो०—जहँ अत्यंत सराहिबो अतिशयोक्ति सु कहंत।
भेदक, संबंधा, चपल, अक्रम, रूप अत्यंत॥

विवरण—जहाँ किसी की अतिशय सराहना करना मंजूर हो, उस उक्ति के कथन में अतिशयोक्ति होती है। उसके छः भेद हैं—(१) भेदकातिशयोक्ति, (२) संबंधातिशयोक्ति, (३) चप-

* इस अलंकार को अँगरेजी में 'हाइपरबोला' (Hyperbole) और फारसी-उर्दू में 'मुबालगा' कहते हैं।

लातिशयोक्ति, (४) अक्रमातिशयोक्ति, (५) रूपकातिशयोक्ति और (६) अत्यंतातिशयोक्ति ।

१—भेदकातिशयोक्ति

दो०—औरै शब्दन की जहाँ उत्कर्पता सुबेस ।
भेदक अतिशय उक्ति तहँ मानत सुकवि नरेस ॥

'औरै औरै' शब्द इस अलंकार का वाचक है । जैसे—

दो०—औरै कछु बोलनि चलनि औरै कछु मुसकानि ।
औरै कछु सुख देत है सकैं न बैन बखानि ॥

दो०—अनियारे दीरघ नयनि किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछुक जेहि बस होत सुजान ॥

कभी-कभी 'न्यारी रीति है' 'और ही बात है' 'अनोखी बात है' इत्यादि या इसी अर्थ के और भी शब्द इस अलंकार के वाचक होते हैं । जैसे—

जगत को जैतवार जीत्यो अवरंगजेब न्यारी रीति भूतल निहारी सिवराज की ।

दो०—अवलोकनि बोलनि हँसनि डोलनि औरै और ।
आवनि मृदु गावनि सबै औरै वाके तौर ॥

मंगलीक बदन बिलास 'लछिराम' औरै कलँगी मरोर मौर भाल सजवारे में । औरै आनि औरै वानि औरै चढ़ी सानभुज और धनुबान राम कर गजरारे में ॥

औरै हँसनि बिलोकिबो, औरै बचन उदार ।
तुलसी ग्राम-बधून के, देखे रह न सँभार ॥

२—संबंधातिशयोक्ति

दो०—जहँ अयोग्य है योग्य में जहँ अयोग्य में योग्य ।

विवरण—संबंधातिशयोक्ति के दो भेद हैं—(१) योग्य में अयोग्यता प्रकट करके प्रस्तुत की अतिशय बड़ाई करना और (२) अयोग्य में किसी के संबंध से ऐसी योग्यता दिखलाना कि अतिशय बड़ाई प्रकट हो।

(१) योग्य में अयोग्यता

सान भरे भुज दंड अखंड तिहूँ पुरमंडन मान भरै को ?
आँगुरि वे अकलेस धनी सनी मौजन में अनुमान अरै को ?
यौं नखभा 'लछिराम' लखे नखतावली के परमान धरै को ?
श्रीरघुनाथ के हाथन सामुहे कल्पलता सनमान करै को ?

कल्पलता सम्मान करने योग्य वस्तु है, पर उसे अयोग्य ठहराकर उसके संबंध से रामजी के हाथों की अतिशय उदारता प्रकट की गई है। पुनः—

मति सुन्दर लखि मुख सिय तेरो। आदर हम न करत ससि केरो।

यहाँ शशि सम्मान योग्य होने पर भी मुख की अतिशय सुन्दरता का वर्णन करने के हेतु अनादर का पात्र ठहराया गया है।

कानन कुंज प्रमोद बितान भरे फल फूल सुगंध बिधानै॥
बावली के अरबिंदन पै मकरंद मलिंद सने सुभ गानै॥
त्यों 'लछिराम' तरंगन ते सरजू के कढ़े सुर साजि बिमानै।
औधपुरी महिमा यों चितै अमरावति को हम क्यों सनमानै ?

(२) अयोग्य में योग्यता

फबि फहरें अति उच्च निसाना। जिन महँ अटकत बिबुध बिमाना।

बिबुधविमान अवश्य ही बहुत ऊँचे पर होंगे। उनसे संबंध प्रकट करने से 'ध्वजा' में यह योग्यता हो गई कि उसकी ऊँचाई की अतिशयोक्ति हो गई। बिबुधविमान के संबंध से अत्यंत ऊँचाई लक्षित हुई। पुनः—

बासन बाँस कठोती हुती औ फटी दुपटी जेहि बीतत सीवत।
'गोकुल' छानी सरी गरी भीति रहे जित चूहन के गन जीवत।
धाम सुदामै लह्यो हरि सों जेहि देखिये देखि दिगंपति भीवत।
बैठि जितै गन चातक के घन ते घन चोंच चलाय के पीवत।

इसमें चातक और घन के संबंध द्वारा यह प्रकट किया है कि सुदामा का मंदिर बहुत ऊँचा था। कोई घर इतना ऊँचा नहीं होता, परन्तु यहाँ घन और चातक के संबंध से अयोग्य-घर में भी अतिशय ऊँचाई की योग्या कथन की गई है।

सूचना—'संबंधातिशयोक्ति' का कविता में बहुत अधिक काम पड़ता है। इस अलंकार के बहुत प्रचलित उदाहरण यों कहे जाते हैं कि 'इसका वर्णन' शेष शारदा भी नहीं कर सकते, वेद भी नेति-नेति कहता है। यथा—

जेहि बर बाजि राम असवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा।
सारद श्रुति सेषा ऋषय असेषा जा कहँ कोउ नहिं जाना॥
दो०—जो सुख भा सिय-मातु मन देखि राम बर भेष।
सो न सकहिं कहि कल्प सत सहस सारदा सेष॥
कोटिहु बदन नहिं बनै बरनत जगजननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेस सारद मंदमति तुलसी कहा?

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शेष, सारदा, श्रुति इत्यादि को कथन के अयोग्य ठहराकर उनके सम्बन्ध से प्रस्तुत में अतिशयोक्ति की स्थापना की जाती है।

३—चपलातिशयोक्ति

दो०—कारन के लखतहि सुनत कारज आसुहिं होय।
चपला अतिशय उक्ति यह अलंकार है सोय॥

पंचबटी के बिहंग उमंग में बोलत बानी सुधारस घूटे।
त्यों 'लछिराम' अदेव ललाट तें आयु की रेख के अंक वे छूटे।
आसुरी हाथन तें पल एक में भाग सोहाग के भाजन फूटे।
आगम श्रीरघुनाथ सुने मुनि-मंडली के मनबंधन छूटे।
तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयो जरि छारा।
बिमल कथा कर कीन्ह अरंभा। सुनत नसाहिं काम मद दंभा।
दो०—आयो आयो सुनत ही सिव सरजा तुव नाँव।
बैरिनारिदृगजलन सों बूड़ि जात अरि गाँव॥

भूषन भनत साहि तनै सिवराज एते मान तव धाक आगे दिसा उबलति है। तेरो चमू चलिवे की चरचा चले ते चक्रवर्तिन की चतुरंग चमू बिचलति है।

४—अक्रमातिशयोक्ति

दो०—कारन अरु कारज जहाँ होत एक ही संग।
अक्रमातिशय उक्ति सो बरनत सुकबि सुढंग॥

संधान्यौ प्रभु बिसिष कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।
पायन को जमुना उमहीं जल बाढ़ो जबै बसुदेव गरे लौं॥
छूँकत ही यदुनंदन के जमुनाजी बहीं तरवा के तरे लौं।
दोहा—बानासन ते रावरे बान बिषम रघुनाथ।
दससिर सिर धर ते छुटे दोऊ एकहि साथ॥
उठ्यो संग गजकर कमल चक्र चक्रधर हाथ।
कर ते चक्र सु नक्रसिर धर ते बिलग्यो साथ॥
उद्धत अपार तुव दुंदभी धुकार साथ,
लंघैं पारावार बालवृंद रिपुगन के।
तेरे चतुरंग के तुरंगन के रँगे रज,
साथ ही उड़ात रज पुंज हैं परन के।

दच्छिन के नाथ सिवराज तेरे हाथ चढ़ैं,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
'भूषन' असीसैं तोहि करत कसीसैं,
पुनि बानन के साथ छूटैं प्रान तुरकन के।

सूचना—संग ही, साथ ही, एकै साथ, साथ अथवा इसी अर्थ का कोई शब्द इस अलंकार का वाचक जान पड़ता है।

५—रूपकातिशयोक्ति *

दो०—जहँ केवल उपमान कहि प्रगट करै उपमेय।
रूपकातिशय उक्ति तहँ बरनत सुकबि अजेय॥

विवरण—जहाँ केवल उपमान कहके उपमेयों का अर्थ समझा जाता है, वहाँ यह अलंकार होता है। जैसे—

"कनकलता पर चंद्रमा धरै धनुष द्वै बान।"

यहाँ कनकलता—कोई स्त्री। चंद्रमा—मुख।—धनुष—भौंहैं। बाण—नेत्र।

ब्याह के समय रामचंद्रजी सीताजी के सिर में सिंदूर देते हैं-
राम सीय सिर सेंदुर देहीं। उपमा कहि न जात कबि केहीं।
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के।

यहाँ अरुनपराग—सेंदुर। जलज—शंख वा कमल। शशि-सीताजी का मुख। अहि-रामजी का हाथ।

सूचना—सूरदास ने इस अलंकार में अनेक पद कहे हैं। उनमें से एक यह है। उसमें राधिकाजी के समस्त अंगों का वर्णन है।

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगल कमल पर गज क्रीड़त है तापर सिंह करत अनुराग।

---

* इसको फारसी में 'सनअत तअज्जुब' कह सकते हैं।

हरि पर सरबर सर पर गिरिबर गिरि पर फूले कंज पराग।
रुचिर कपोत बसै ता ऊपर ता ऊपर अमृत फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव ता पर सुक पिक मृगमद काग।
खंजन धनुष चंद्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग।

युगल कमल—दोनों चरण। गज-मंद चाल। सिंह—कटि। सरवर—नाभि। गिरिवर—कुच। कंज—मुख। कपोत—कंठ। अमृत फल—चिबुक। पुहुप-गोदनाविंदु। पल्लव-होंठ। शुक—नाशिका। पिक-बाणी। मृगमद-कस्तूरीविंदु। काग—काकपक्ष, पाटी। खंजन-नेत्र। धनुष-भौंहें। चंद्रमा—ललाट। मणिधर-नाग—सीस फूल सहित गूथी हुई वेणी।

[इसी प्रकार और भी समझना चाहिये]

६—अत्यंतातिशयोक्ति

दो०—जहाँ हेतु ते प्रथम ही प्रगट होत है काज।
अत्यंतातिशयोक्ति तेहि कहैं सकल कविराज॥

जैसे—

दोहा—हनूमान के पूंछ में लगन न पाई आग।
लंका सिगरी जरि गई गये निसाचर भाग॥
राजन! राउर नाम जस सब अभिमतदातार।
फल अनुगामी महिपमनि मन अभिलाष तुम्हार॥

इसमें पहले फल, तदंतर मनोऽभिलाष वर्णित किया गया है।

कवित्त—मंगन मनोरथ के प्रथमहिं दाता तोहिं,
कामधेनु काम तरु सो गनाइयतु है।
याते तेरे गुन सब गाय को सकत कबि,
बुद्धि अनुसार कछु तऊ गाइयतु है।

'भूषन' भनत साहितनै सिवराज निज,
बखत बढ़ाय करि तोहिं ध्याइयतु है।
दीनता को डारिऔ अधीनता बिडारि
दीन्ह दारिद को मारि तेरे द्वार आइयतु है।

दो०—कबि तरुवर सिव सुजस रस सींचे अचरज मूल।
सुफल होत हैं प्रथम ही पीछे प्रगटत फूल।
ग्राह ग्रहीत गयंद मुख कढ़न न पाई 'त्राहि'।
पहले ही हरि आय के निजकर उधरयो ताहि।

१४—व्यतिरेक

दो०—उपमा ते उपमेय में अधिक कछू गुन होय।
व्यतिरेकालंकार तेहि कहैं सयाने लोय॥

विवरण—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ उत्कर्ष कहा जाय वहाँ यह अलंकार होता है। यह उत्कर्ष दो प्रकार से प्रकट किया जाता है—

१—उपमेय में उपमान से कोई गुण अधिक कहा जाय।
२—उपमान में कोई हीनता दिखाई जाय।

[पहले ढंग के उदाहरण]

१—मुख है अंबुज सो सही मीठी बात बिसेष।

२—संत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन पै कहत न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवैं सुसंत पुनीता।

३—सखि वामें जगै छनजोति छटा इत पीतपटा दिनरैन मड़ो।
वह नीर कहूँ बरसै सरसै यह तो रसजाल सदा ही अड़ो।
वह स्वेत ह्वै जात अपानिप ह्वै यह रंग अलौकिक रूप गड़ो।
कह 'दास' बरोबरि कौन करै घन औ घनस्याम सों बीच बड़ो।

४-सिवराज साहितनुव सत्थ नित हय गल लक्खन संचरइ।
यक्कय गयंद यक्कय तुरंग किमि सुरपति सरबरि करइ॥

(दूसरे ढंग के उदाहरण)

१-जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

२-जन्म सिंधु पुनि बंधु विष दिन मलीन सकलंक।
सियमुख समता पाव किमि चंद बापुरो रंक॥

३-घटै बढ़ै सकलंक लखि सब जग कहै ससंक।
सीयबदन सम है नहीं रंक मयंक एकंक॥

१५-समासोक्ति

दो०-जहँ प्रस्तुत में होत है अप्रस्तुत को भान।
समासोक्ति तेहि कहत हैं कवि जन परम सुजान॥
कवि इच्छा जेहि कथन की 'प्रस्तुत' ताको जानु।
अनचाहे हूँ फुरि परै 'अप्रस्तुत' सो मानु॥

विवरण—जब किसी कथन में कविइच्छित अर्थ के अलावा (शब्दों की गम्भीर गठन के कारण) कोई दूसरा अर्थ भी भासमान होता है तब उस कथन में समासोक्ति अलंकार माना जाता है। ऐसे कथन में बहुधा ऐसे श्लिष्ट शब्द अनायास आ जाते हैं, जिससे दूसरे अर्थ का भान होने लगता है, परन्तु यह जरूरी नहीं है कि श्लिष्ट शब्दों के ही द्वारा यह अलंकार सिद्ध हो सके। अश्लिष्ट शब्दों से भी काम चल सकता है।

(अश्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१-लोचन मगु रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।

*इस अलंकार को अँगरेजी में 'माडेल मेटफर' (Model Metaphor) कहते हैं।

इसमें कवि के इच्छित अर्थ के अलावा यह भी भासित होता है कि किसी चंचल व्यक्ति को बँधुवा बनाने के व्यवहार में किवाड़ों को बंद कर देना होता है।

२-"कुमुदिन हू प्रमुदित भई साँझ कलानिधि जोय।"

इसमें कवि का इच्छित अर्थ तो यह है 'संध्या समय में चन्द्रमा को देखकर कुमुदिनी फूली।' परन्तु इससे किसी नायिका की दशा की भी सूचना मिलती है।

(श्लिष्ट शब्दों द्वारा)

१-बड़ो डील लखि पील को सबन तज्यो बन थान।
धनि सरजा तू जगत में ताको हर्यो गुमान॥

इसमें 'सरजा' शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ है (१) सिंह और (२) शिवाजी का एक खिताब होने के कारण स्वयं शिवाजी।

कवि की इच्छा सिंह वर्णन की है। परंतु 'सरजा' शब्द श्लिष्ट होने के कारण इसमें शिवाजी और औरंगजेब के व्यवहार का भी भान होता है।

२-तुही साँच द्विजराज है तेरी कला प्रमान।
तो पै सिव किरपा करी जानत सकल जहान॥

इसमें कवि का इच्छित तात्पर्य तो चन्द्रमा की प्रशंसा है, परन्तु 'द्विजराज' और 'शिव' शब्द श्लिष्ट होने से भूषण कवि और शिवाजी के व्यवहार का भान होता है।

३-'भूषन' जो करत न जाने बिनु घोर सोर भूलि गये आपनी उँचाई लखे कद की। खोइयौ प्रबल मदगल गजराज एक सरजा सों बैर कै बढ़ाई निज मद की॥

यहाँ भी कवि की इच्छा हाथी के वर्णन की है, परन्तु पहले उदाहरण की तरह इसमें भी शिवाजी और औरंगजेब के व्यवहार का भान होता है।

४-लता नवल तनु अंग, जाति जरी जीवन बिना।
कहा सिख्यो यह ढंग, तरुन अरुन निरदै निरखु॥

इस सोरठा में दोपहर के प्रचंड तापयुक्त सूर्य के तेज से किसी नाजुक लता के सूख जाने का वर्णन है, परन्तु गौर करने से किसी विरहिणी नायिका की दशा का भी भान होता है।

५-जीवन के दानि हो सुजान हो सरस अति,
जगत के जीवन को आनँद उमाहे हो।
सुजस को पाओ पर स्वारथ को धाओ,
धरा तपनि मिटाइवे की मति अवगाहे हो।
'गोकुल' कहत इन्हें आस रावरे की है,
जू प्यास इनकी न मेटि देत कहो काहे हो।
गरजि घुमरि घनश्याम क्यों बरावत हो,
कछु चातकीन हूँ को अपराध चाहे हो।

इसमें कवि की इच्छा बादल और चातकियों के वर्णन की है, परन्तु तनिक ही गौर करने से इसमें कृष्ण और गोपियों के व्यवहार का भान मिलता है।

(इसी प्रकार और भी समझ लेना चाहिये)

सूचना—(श्लेष और समासोक्ति का भेद)
१-श्लेष में सभी अर्थ प्रस्तुत समझे जाते हैं।
२-समासोक्ति में प्रस्तुत में अप्रस्तुत का भान-सा होता है।

१६-परिकर *

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को सुविशेषन में होय।
अलंकार परिकर तहाँ बरनत हैं कवि लोय॥

---

* इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत इश्तकाक' कह सकते हैं।

विवरण—जहाँ कोई ऐसा विशेषण लाया जाय जो उस पद की क्रिया से सम्बन्ध रखता हो। यथा—

१-जानो न नेकु व्यथा पर की बलिहारी तऊ पै सुजान कहावत।

२-भाल में जाके सुधाधर है वहै साहेब ताप हमारो हरैगो।
अंग है जाको बिभूति भरो वहै भौन में सम्पति भूरि भरैगो।
घातक है जो मनोभव को जग पातक वाही के जोर जरैगो॥
'दास' जू सीस पै गंग लिये रहै ताकी कृपा कहो को न तरैगो॥

३—चक्रपानि हरि को निरखि असुर जात भजि दूरि।
रस बरसत घनश्याम तुम ताप हरत मुद पूरि॥

४—सीतल करैंगे मेटि ताप त्रिभुवन राम स्याम घन बरन बरसि दान धारा को।

१७—परिकरांकुर ❀

दो०—अभिप्राय जहँ क्रिया को है विशेष्य पद माहिं।
सुकवि सकल बरनन करैं परिकर अंकुर ताहि॥

यथा—रतनाकर बासी रमा प्रानन को आधार!
हरि कुबेर पति रावरो हरैं रोग बिकरार॥

२—बदन मयंक तापत्रय मोचन।

३—सुनहु बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।

४—धरनिसुता धीरज धरेउ समय सुधर्म बिचारि।

५—हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।

६—जम करि मुहँ तरहरि पर्‌यो यहि धर हरि चितलाय।
बिषयतृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाय॥

❀ इस अलंकार को भी फारसी और उर्दू में 'सनअत इरतकाक' कह सकते हैं।

यहाँ 'नरहरि' शब्द साभिप्राय है। यमराज को हाथी (करि) माना तो हाथी को मारने के लिये नरहरि (नृसिंह) समर्थ है।

७—हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इंद्रियसंभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे॥

८—तुलसिदास भवव्याल ग्रसित तव सरन उरगरिपुगामी।

'हृषीकेस' और 'उरगरिपुगामी' संज्ञाएँ साभिप्राय हैं,-क्योंकि हृषीकेश (हृषीक ईश=इंद्रियों का मालिक) ही इंद्रियसंभव दुःख दूर कर सकता है, और उरगरिपुगामी (गरुड़ पर सवार होनेवाला) ही 'भवव्याल' से रक्षा कर सकता है।

१८—श्लेष *

दो०—दोय तीन अरु भाँति बहु आवत जामैं अर्थ।
श्लेष नाम ताको कहत जिनकी बुद्धि समर्थ॥

कुछ उदाहरण—

१—द्विजतिय तारक पूतना मारन मैं अति धीर।
काकोदर को दरपहर जय यदुपति रघुबीर॥

२—सगुन सभूषण सुभ सरस सुबरन सुपद सराग।
इमि कबिता अरु कामिनी लहै जु सो बड़ भाग॥

३-सुंदर सोहै सुगंधित अंग अभंग अनंग कला ललिता है।
तैसी 'किसोर' सोहात सुयोगिन भोगिन हूँ को मनोहरता है॥
संग अली अवली-रव राजत अंग रसीली बसी करता है।
कोमलतायुत बीर बसंत की बैहर की बनिता की लता है॥

* इस अलंकार को फारसी और उर्दू में 'ईहाम' कहते हैं।

४-ढरै मधुमाधुरी पराग सुबरनसनी,
सरस सलोनी पाप तापन के अन्त की।
कामना जुगति की उकुति सरसावत सी
छावै मधुराई कल कोकिल के भन्त की।
'गोकुल' कहत भरी गुनन गँभीर सीरी,
कानन लौं आवति पियूषए सेवन्त की।
ऐसी सुखदानी है न जानी जगती में और,
कविन की बानी बर बैहर बसन्त की।

५-पानिप के आगर सराहैं सब नागर,
कहत 'दास' कोस में लख्यो प्रकासमान में॥
रज्ज के संयोग ते अमल होत जब तब,
हरि हितकारी बास जाहिर जहान में॥
श्री को भाय सहजै करत मनकाय थकै,
बरनत बानी जा दलन के बिधान में।
एतो गुन देखो राम साहिब सुजान में,
कि बारिज बिहान में कि कीमत कृपान में॥

सूचना—स्मरण रखना चाहिये कि अर्थश्लेप अलंकार में बहुधा संदेहालंकार से सहायता ली जाती है, परन्तु मुख्यता श्लेप की होती है। इसलिये वही माना जाता है। उदाहरण नं० ३, ४ एवं ५ में देखो और समझो।

१९-अन्योक्ति *

दो०—जहाँ सरिस सिर डारिकै कहै सरिस सों बात।
सरिस के सिर डारि कै सरिस से बात कहना॥

दो०—भयो सरिसपति सलिलपति अरु रतनन की खानि।
कहा बड़ाई समुँद की जु पै न पीजत पानि॥

यहाँ समुद्र पर ढारकर यह बात किसी ऐसे धनी के लिये कही गई है जो धनी तो बहुत बड़ा है, परंतु उससे किसी को कुछ सुख नहीं प्राप्त होता है। कवि की इच्छा (प्रस्तुत) यही है, समुद्र का वृत्तांत अप्रस्तुत है। पुनः—

"काल कराल परै कितनो पै मराल न ताकत तुच्छ तलैया।"

यहाँ हंस पर ढारकर यह बात कही गई है कि विवेकी पुरुष दुःख पाने पर भी अनुचित कार्य करने की ओर नहीं झुकते।

पुनः-मानससलिलसुधाप्रतिपाली। जिये कि लवनपयोधि मराली।
नवरसालबनबिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिनकरीला।

यहाँ हंसिनी और कोयल पर ढारकर यह जताया गया है कि सुकुमार और सुखभोगिनी स्त्रियाँ वनवास का कष्ट सहन नहीं कर सकतीं। पुनः—

सुन दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करहिं बिकासा।

यहाँ सीताजी कमलिनी पर ढारकर रावण से अपना वृत्त कहती हैं।

हारे बाटवारे जे बिचारे मंजलिन भारे,
दुखित महारे तिन को न सुख तैं दियो।
बन के जे पंछी तिनहूँ के काम को न कछु,
साँझ समै आय बिसराम उन ना लियो।
आपनेहूँ तन की न छाय करि सक्यौ मूढ़,
'दयानिध' कहै जग जन्म ही वृथा गयो।
धाम को न आड़ भयो फूल फल को न लाड़,
एरे ताड़ वृक्ष एतो बढ़िकै कहा कियो।

यहाँ भी अप्रस्तुत ताड़ वृक्ष के वर्णन से किसी ऐसे बड़े मनुष्य का वर्णन प्रस्तुत है जिससे किसी का कुछ लाभ नहीं पहुँचता।

२०—पर्यायोक्ति *

दो०—*पर्यायोक्ति प्रकार द्वै कछु रचना सों बात।*
मिस करि कारज साधिये जो हित चितहिं सोहात॥

[१]—"कछु रचनासों बात"—जो बात कहनी हो उसे सीधे शब्दों में न कहकर कुछ घुमाफिराकर कहना [कोई-कोई इस अलंकार में व्यंग्य मुख्य मानते हैं, परंतु हम ऐसा नहीं मानते]। जैसे—कहना हो कि 'अमुक व्यक्ति मर गया' इस बात को इन्हीं शब्दों में न कहकर यों कहो कि "अमुक व्यक्ति को सुरराज ने अपने पास बुला लिया" यह पर्यायोक्ति है।

सीधे यह न कहकर कि "भाऊसिंह हरिभक्त हैं" मतिराम जी कहते हैं—

दो०—जाके लोचन करत हैं कुबलय कंज प्रकास।
सो भाऊ भूपाल के करत हिये में बास॥
पुनः-कत भटकत गावत न क्यों वाही के गुनगाथ।
जाके लोचन ही किये बिन बलयनि रतिहाथ॥

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कहकर कि 'शंकर का भजन कर' यों कहा कि क्यों भटकता फिरता है, उसीके गुणगाथ क्यों नहीं गाता जिसके नेत्रों ने रति के हाथों को विना कंकण के कर दिया [अर्थात् काम को जलाकर रति को विधवा कर दिया था]।

पुनः-दो०-सीताहरन तात जनि कहेउ पिता सन जाय।
जो मैं राम तो कुल सहित कहहिं दसानन आय॥

* इस अलंकार को अँगरेजी में 'पेरीफ्रेसिस' [Periphrasis] कहते हैं।

इसमें रामजी ने सीधे शब्दों में यह न कहकर कि 'मैं रावण को मारूँगा' इस प्रकार कहा, जैसा कि दोहे के उत्तरार्द्ध से प्रकट है।

[२] 'मिस करि कारज साधिये' जहाँ किसी बहाने से इच्छित कार्य के साधन का वर्णन हो, यह दूसरी पर्यायोक्ति होगी। यथा—

नाथ लषन पुर देखन चहहीं। प्रभु संकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जो राउर अनुसासन पाऊँ। नगर दिखाय तुरत लै आऊँ॥

यहाँ स्वयं रामजी को जनकपुर देखने की इच्छा थी, पर लक्ष्मण की इच्छा का बहाना करके आज्ञा माँगते हैं। पुनः—

दो०—देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छवि बाढ़ै प्रीति न थोरि॥
पुर बालक कहि कहि मृदुबचना। सादर प्रभुहिं दिखावहिं रचना॥
दो०—सब सिसु यहि मिस प्रेमबस परसि मनोहर गात।
तनु पुलकहिं अति हर्ष हिय देखि देखि दोउ भ्रात॥
पुनः-पूसमास सुनि सखिन सन साईं चलत सवार।
लै कर बीन प्रबीन तिय गायो राग मलार॥

यहाँ मलार राग गाकर पानी बरसा देने से स्वामी का विदेश-गमन रोक दिया। इस गाने के बहाने से इच्छित कार्य का साधन किया।

सूचना—इस अलंकार में मिस, व्याजादि शब्दों का कथन अनिवार्य नहीं है। चाहे कथन करे, चाहे और प्रकार से कहे। कैतवापह्नुति में एक वस्तु के छिपाने के हेतु मिस या व्याज से दूसरी वस्तु प्रकट की जाती है, और इस अलंकार में किसी विशेष इच्छित कार्य साधन के लिये कोई युक्तियुक्त क्रिया की जाती है जिसे केवल मिस वा छल कह सकते हैं।

२१—व्याजस्तुति

पहली

दो०—देखत तो निंदा लगै समुझे अस्तुति होय।
व्याजस्तुति भूपन सबै ताहि कहैं कवि लोय॥

दो०—कहा कहौं कहत न बनत सुरसरि तेरी रीति।
ताके तू मूँड़े चढ़ै जो आवै करि प्रीति॥

यह देखने में तो गंगा की निंदा-सी जान पड़ती है, पर समझने से यों स्तुति होती है कि जो प्रेमसहित तेरे पास आता है उसे तू महादेव बना देती है और फिर उसकी जटा में बैठ जाती है।

पुनः—भसम जटा बिष अहि सहित गंग कियो तैं मोहि।
भोगी तें जोगी कियो कहा कहौं अब तोहि॥

दोहा—जमुना तुम अबिबेकिनी कौन लियो यह ढंग।
पापिन सौं निज बंधु को मान करावति भंग॥

[पद्माकरकृत गंगालहरी से]

जोग जप जागै छाँड़ि जाहु ना परागै भैया,
मेरी कही आँखिन के आगे सुतौ आवैगी।
कहै 'पद्माकर' न ऐहै काम सरसुती,
साँचहू कलिंदी कान करन न पावैगी।
लैहै छीन अंबर दिगंबर के जोरावरी,
बैल पै चढ़ाय फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की,
सुगंगा गजखाल की खिलत पहिरावैगी॥

एक महापातकी हत्रगात की दसा बिलोकि,
देत यों उराहनो सु आठहू पहर है।
मीच समय तेरो उत आप गयो कंठ इत,
व्यापि गयो कंठ कालकूट सो जहर है।
आप चढ़ी सीस मोहि दीन्हीं बकसीस,
औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर है।
मोहिं कर नंगा अंग अंगन भुजंगा,
बाँधो एरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है ॥२॥

बरवा—कुजनपाल गुनबर्जित अकुल अनाथ।
कहहु कृपानिधि राउर कस गुननाथ ॥

सूचना—पद्माकरकृत 'गंगालहरी' में इस अलंकार के बहुत उत्तम उदाहरण हैं। विनयपत्रिका में "बावरो रावरो नाह भवानी" वाला पद इसी अलंकार में कहा गया है।

दूसरी

दो०—कीन्हें पर अस्तुति जहाँ पर अस्तुति दरसाय।
ताहू को व्याजस्तुतै कहैं कबिन के राय ॥

यथा-जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कौन भलाई ॥

यहाँ दूत की बड़ाई से दूत के मालिक (रामचंद्र) की बड़ाई झलकती है।

या बृंदाबन बिपिन में बड़ भागी मम कान।
जिन मुरली की तान सुनि हिय हरषित अँग आन ॥

यहाँ कानों की बड़ाई से मुरली की अत्यंत बड़ाई प्रकट होती है।

२२—व्याजनिंदा *

पहली

दो०—अस्तुति कीन्हे हू जहाँ निंदा ही दरसाय।
ताहि व्याजनिंदा कहैं कवि कोविद हरषाय ॥

यथा—

१—सेमर तू बड़ भाग है कहा सराह्यो जाय।
पंछी करि फल आस तोहि निसदिन सेवहिं आय ॥

२—राम साधु तुम साधु सुजाना। रामसमातु तुम भलि पहिचाना ॥

३—धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करत कर्म निपुनाई ॥

४—अहो मुनीस महाभटमानी।

५—नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म बिचारी ॥
लाजवंत तुम सहज सुभाऊ। निजगुन निजमुख कहसि न काऊ ॥

दूसरी

औरे की निंदा किये पर की निंदा होय।
निंदा व्याज तहाँ कहैं कवि कोविद सब कोय ॥

यथा—

दई निरदई सों भई 'दास' बड़ी ये भूल।
कमलमुखी के जिन कियो हिय कठिनई अतूल ॥

यहाँ दई की निंदा से कमलमुखी (नायिका) की निंदा झलकती है।

---

* इस अलंकार को अंगरेजी में 'आयरनी' (irony) और फारसी तथा उर्दू में 'हजोमतीह' कहते हैं।

दो०-जु हरि हमारो जीव निज ताहि चल्यौ लै दूर।
कोे सो जा यहि कूर को धस्यो नाम अक्रूर॥

यहाँ अक्रूर की निंदा से नामकरण करनेवाले की भारी निंदा प्रकट होती है।

२३-विरोधाभास *

दो०—द्रव्य क्रिया गुन जाति में भासत जहाँ बिरोध।
कहत बिरोधाभास तेहि बुध जन सहित सुबोध॥

विवरण—जहाँ विरोधी पदार्थों का वर्णन किया जाय वह विरोधाभास अलंकार है। ऐसा वर्णन वर्णनीय की विशेषता वा उत्कर्ष जताने के लिये होता है। प्रस्तार करने से इसके दस भेद हो जाते हैं। जैसे—

जाति का विरोध—(१) जाति से (२) गुण से (३) क्रिया से (४) द्रव्य से।

गुण का विरोध—(१) गुण से (२) क्रिया से (३) द्रव्य से।

क्रिया का विरोध—(१) क्रिया से (२) द्रव्य से

द्रव्य का विरोध—(१) द्रव्य से।

सूचना—कुछ उदाहरण लिख देते हैं। पाठक स्वयं विचार कर लें कि किसका किससे विरोध है।

१-चरनकमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कछु दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।
'सूरदास' स्वामी करुनामय बार बार बंदौं तेहि पाई।

* इस अलंकार को फारसी तथा उर्दू में 'मुहतमिलुल जिद्दैन' कहते हैं।

२-भरद्वाज सुनु जाहि जब होत बिधाता बाम।
धूरि मेरु सम जनक जम ताहि ब्याल सम दाम ॥
३-तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई।
४-गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई।
गरुअ सुमेर रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवहिं जाही।
५-पवन अचल गिरि रेनु पुनि जलधि नहीं गंभीर।
धरा अतिहिं लघु होति है कृपादृष्टि रघुबीर ॥

पुनः-

६-झाँकी रघुबीर की बिलोकि कै अचेतन भे चेतन, अचेतन चेतन भे देख्यौ आज ॥

७-सो अज प्रेम भगतिबस कौसल्या की गोद।
८-कुलिस कठोर कूर्म पीठि ते कठिन अति हठि न पिनाक काहू चपरि चढ़ायो है। 'तुलसी' सो राम के सरोजपानि पर्सत ही टूटो मानो बारे ते पुरारि ही पढ़ायो है।
९-वा मुख की मधुराई कहा कहौं मीठी लगै अँखियान लुनाई।
१०-लाल तिहारे दृगन की कहौ रीति यह कौन।
जासों लागे पलक दृग लागे पलक पलौ न ॥
११-तंत्रीनाद, कबित्तरस, सरस राग, रतिरंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे, जे बूड़े सब अंग ॥
१२-कितो मिठास दयो दई इते सलोने रूप।

सूचना-(१) यह अलंकार अद्भुत रस की कविता के लिये बड़े काम का है। (२) इसी से मिलता-जुलता विषमालंकार का 'दूसरा भेद' है। दोनों की पहचान भली भाँति कर लेना चाहिये। दोनों में भेद यह है कि इस विरोधाभास में जो विरोध-कथन किया जाता है वह केवल आभासमात्र

(नितांत झूठा) है। विषमालंकार के दूसरे भेद में जो विरोध कहा जाता है वह सत्य होता है और केवल कार्यकारण के संबंध ही में कहा जाता है।

२४-विभावना

किसी घटना के कारण के संबंध में कोई विलक्षण कल्पना की जाय उसे 'विभावना' कहते हैं। इसके छः भेद हैं—

पहली

दो०—*कारन बिनही होत है कारज कौनौ सिद्ध।*

१-बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आननरहित सकल रस भोगी। बिन बानी बकता बड़ जोगी॥

२-केशव कहि न जाय का कहिये।
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं तनु बिनु लिखा चितेरे।
... ...

३-दो०-सुनत लखन श्रुति नैन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत॥

दूसरी

दो०—*हेतु अपूरण तें जहाँ कारज पूरन होय।*

यथा—

१-काम कुसुम धनु सायक लीन्हें। सकल भुवन अपने बस कीन्हें।

२-तोसो को सिवाजी जेहि दो सौ आदमी सों जीत्यो जंग सरदार सौ हजार असवार को।

३-राजकुमार सरोज से हाथन सों गहि संभु सरासन तोर्यो।

४-संकर पायन में लगुरे मन थोरही बातन सिद्धि महाई।

५-दो०-मंत्र परम लघु जासु बस बिधि हरि हर सुर सर्व।
महामत्त गजराज कहँ बस कर अंकुस खर्व।

तीसरी

दो०—प्रतिबंधक के होत हू होय काज जेहि ठौर।

१-अति बिचित्र गति रावरी जग जाहर जसवंत।
तेज छत्रधारीन हूँ असहन ताप करंत॥

२-रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत तोहि अछय तेहि मारा।

३-दो०-नैना नेक न मानही कितो कहौं समुझायँ।
ये मुँहजोर तुरंग लौं ऐंचत हूँ चलि जायँ॥

४-दो०-तुव बेनी नागिन रहै बाँधी गुनन बनाय।
तऊ बाम ब्रजचंद को बदाबदी डसि जाय॥

सूचना—तऊ, तोभी, इस अलंकार के वाचक हैं।

चौथी

दो०—जाको कारन जो नहीं उपजत ताते तौन।

१-चंपक की लतिका में सुबास सुमालती की पसरै सुखदैन री।
कौल के कोस ते गंध गुलाब की आवत है लहि दायक चैन री।
'गोकुलनाथ' कुहू निसि में यह राका की राति की दाहऽब है न री।
देखु कपोत के कंठ ते आली कढ़े कल कोकिल की बर बैन री॥

२-दो०-भयो कंबु ते कंज इक सोहत सहित बिकास।
देखहु चंपक की लता देत गुलाब सुबास॥

३-क्यों न उतपात होइ बैरिन के झुंडन में कारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं।

४-भयो तात निसिचरकुलभूषन।

५-बीना नाक जु संख सों होत सुनौ दै ध्यान।

पाँचवीं

दो०—बरनन हेतु विरुद्ध ते उपजत हैं जहँ काज।

१—सिय हिय सीतल भो लगे जरत लंक की झार॥

२—आनन ऐन सुधा को हहा तेहि ते इतनो बिषबैन बकै तू।

३—तुव मुख रबि बालातप जु मरुनायक जसवंत।
अन्य नृपन के कर कमलयुत संकोच करंत॥

४—बन बिहार थाकी तरुनि खरे थकाये नैन।

छठी

दो०—जहँ कारज सों होत है कारन की उतपत्ति।

यथा—

१—दो०—तुव कृपानु धुव धूम ते भयो प्रताप कृसानु।

२—और नदी नदन ते कोकनद होत तेरो कर कोकनद नदी नद प्रगटत है।

३—दो०—कर कलपद्रुम सों करयो जस समुद्र उतपन्न।

४—हाय उपाय न जाय कियो व्रज बूड़त है बिनु पावस पानी।
धारन से अँसुवान की है चखमीनन ते सरिता सरसानी॥

२५—विषम

(अनमिल वस्तुओं वा घटनाओं के वर्णन में विषम अलंकार होता है।)

पहला

अनमिल अनमिल वस्तु को बरनत है जेहि ठौर।
प्रथम विषम तेहि कहत हैं सकल सुकवि सिरमौर॥

यथा—

१-मैं के वा बिनती करी मान ठानि दुख दैन।
कहाँ मधुर मृदु मुख कहाँ कठिन काठ से बैन॥

२-जोग कहाँ मुनि लोगन जोग कहाँ अबला मति है चपला सी।
स्याम कहाँ अभिराम सुरूप कुरूप कहाँ वह कूबरि दासी॥

३-कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा।

४-राजकुमार के कंज से पानि कहाँ कहँ संभुसरासन बज्र सो।

५-कहाँ सीप मुक्ता कहाँ कहाँ कमल कहँ पंक।
कहँ कस्तूरी मृग कहाँ, बिधि बुधि है सकलंक॥

६-को कहि सकै बड़ेन की लखे बड़ी हू भूल।
दीन्हे दई गुलाब के इन डारन ये फूल॥

७-जेहि बिधि तुमहिं रूप अस दीना। तेइ जड़ बर बाउर कस कीन्हा।
कस कीन्ह बर बौराह जेइ बिधि तुमहिं सुन्दरता दई।
जो फल चहिय सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥

८-खारो कियो है पयोनिधि को पय कारो कियो पिक सो अनुमानो।
कंटक पेड़ गुलाब किये अरु चातक बारहु मास तृषानो॥
पंक को अंक कियो है मयंक में आग कियो है चकोर को खानो।
'सागर मिंत' सबै परखाकर हंसपती हरबाहन जानो॥

दूसरा *

दो०-कारन औरै रूप को कारज औरै रूप।
बिषम अलंकृति दूसरी बरनत हैं कविभूप॥

---

* विषमालंकार के इस भेद को फारसी तथा उर्दू में 'सनअत तजाद' कह सकते हैं।

१—खड्ग असित जसवंत की प्रगट करयो जस सेत।
स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम॥
२—उपजे जदपि पुलस्तिकुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर सापबस, भये सकल अघरूप॥
३—या अनुरागी चित्त कौ, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यौं त्यौं उज्ज्वल होय॥
४—श्रीसरजा सिव तो जस सेत सों होत हैं बैरिन के मुँहकारे
'भूषन' तेरे अरुन्न प्रताप सपेद लखे कुनबा नृप सारे॥
५—'भूषन' भनत महाबीर बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे। तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे।

तीसरा *

दो०—और भलो उद्यम किये, होत बुरो फल आय।
ताहि विषम तीजो कहत, बुद्धिवंत कबिराय॥

१—सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहिं सरद चाँदनी जैसे।
२—भलो कहत दुख रउरेहु लागा।
३—दो०-लोने मुख दीठि न लगै, यों कहि दीन्हों ईठ।
दूनी ह्वै लागन लगी, दिये दिठौना दीठ॥
४—कोप बस ह्वै कै हिरनाकुस उदित प्रहलादैं मारिबे को भयो आपु ही हनो गयो।

* सूचना—कई एक कवियों ने 'विषम' अलंकार के ६ भेद लिखे हैं; परन्तु विचार करने से जान पड़ता है कि आगे के तीन भेद इसी तीसरे भेद के अंतर्गत आ जाते हैं।

५—जारिवे को चाहत लंगूर जातुधान देखो बीर हनूमान जू जराय दई लंका को।

६—जीतिवे को आये भृगुनंद रघुनंदन को जीते गये आपु भये रीते बीरताई सों।

२६—सम

यह विषमालंकार का ठीक विरोधी है। इसके भी तीन भेद हैं। यथा—

पहला

बरनत जहाँ बिसुद्धमति, यथायोग्य को संग।
प्रथम समालंकार तेहि, भाषत बुद्धि उतंग॥

१-सो०—जेइ विधि रच्यो गोपाल, तेइ ठकुराइन राधिका।
लखि चख होत निहाल, समसरि जुगुल किसोर की।

२—दो०—चिरजीवो जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर।
को घटि ये बृषभानुजा वे हलधर के बीर॥

३-जेइ बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेइ स्यामलवर रच्यो बिचारी।

४-देखे हैं अनेक ब्याह सुने हैं पुरान बेद बूझे हैं सुजान साधु नरनारी पारखी। ऐसे सम समधी समाज न बिराजमान राम से न बर दुलही न सीय सारखी।

५-जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक बिबिध होहिं मगु जाता।

६—कुबजा को कूबर मधुप अहै त्रिभंगिहि जोग।

७—तू दयाल दीन हौं तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पापपुंजहारी॥१॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसो॥२॥

ब्रह्म तू हौं जीव हौं, तू ठाकुर हौं चेरो।
... ... ॥३॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यौं त्यौं 'तुलसी' कृपाल चरन सरन पावै ॥४॥

८—दो०—मो सम दीन न दीनहितु, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि, हरहु विषम भव-भीर॥

दूसरा

दो०—कारन के सम बरनिये कारज को जेहि ठौर।
देखि सरिस गुन रूप तहँ बरनत हैं 'सम' और॥

यथा—

१—सिय जु दुसह दुख सहि लियो, सूता भूमि की होय।

२—सो०—जगजीवन को चंद, उदय होत ही तम हरै।
छीरसिंधु को नंद, क्यों न उजेरो होय ससि॥

३—दो०—मधुप! बालपन ही पियो दूध पूतना केर।
ताही ते दासी रुची यामें कछू न फेर॥

तीसरा

दो०—ताकी सिद्धि अनिष्ट बिनु उद्यम जाके अर्थ।
ताको 'सम' तीजो कहैं जिनकी बुद्धि समर्थ॥ यथा—

१—दुंदुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुबीर ढहाये॥
(सुग्रीव ने राम की परीक्षा लेनी चाही। राम ने तुरंत परीक्षा दी और उसमें उत्तीर्ण हुए)

२—हरि ढूँढ़न ब्रज में गई, पाये गिरधर लाल।

३—छुवतहि टूट पिनाक पुराना।

४—छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू।

२७—सार

दो०—अर्थन को उत्कर्ष जहँ आगे आगे होत।

विवरण—जहाँ वर्णित वस्तुओं के उत्तरोत्तर उत्कर्ष वा अपकर्ष का वर्णन किया जाय उसे 'सार' कहते हैं। इसका दूसरा नाम 'उदार' भी है।

(उत्कर्ष)

१—सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सबते अधिक मनुज मोहि भाये
तिनमहँ द्विज द्विजमहँ श्रुति धारी। तिनमहँ निगमनीति अनुसारी।
तिनमहँ पुनि बिरक्त पुनि ज्ञानी। ज्ञानिहुते अति प्रिय बिज्ञानी।
तिनतें मोहि अति प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

२—दो०—मखमल ते कोमल महा, कदलि गरभ को पात।
ताहू ते कोमल अधिक, राम तुम्हारे गात॥
३—उन्नत अति गिरि गिरिन तें, हरिपद हैं बिख्यात।
तिन हूँ ते ऊँचो घनो, संत हृदय दरसात॥

हे करतार बिनै सुनो, 'दास' की लोकनि को अवतार कस्यो जनि।
लोकनि को अवतार कस्यो तो मनुष्यन को तो सँवार कस्यो जनि।
मानुष हू को सँवार कस्यो तो तिन्हैं बिच प्रेम पसार कस्यो जनि।
प्रेम पसार कस्यो तो दयानिधि कहूँ बियोग बिचार कस्यो जनि॥

(अपकर्ष)

१—अधमते अधम अधम अति नारी। तिन महँ मैं मतिमंद गँवारी॥
२—दो०—सिला कठोरी काठ तें, तातें लोह कठोर।
ताहू तें कीन्हों कठिन, मन तुम नंदकिसोर॥
३—तृन ते लघु है तूल, तूलहु ते लघु माँगनो।

सू०—इस अलंकार को अँगरेजी में 'क्लाईमेक्स' (Climax) कहेंगे।

२८—क्रम

दोहा—क्रम सों कहि पहिले कछू क्रम ते अर्थ मिलाय।
यों ही और निबाहिये क्रम भूषन सु कहाय॥

विवरण-दो, चार अथवा और भी अधिक चीजों का जिस क्रम से पहले वर्णन करें, उसी क्रम से उनका वर्णन अंत तक निबाहें, उसे 'क्रम' अलंकार कहते हैं। 'यथासंख्य' भी इसी का नाम है। इस अलंकार के मुख्य ३ भेद हैं—

(१) यथाक्रम (२) भंगक्रम (३) विपरीत क्रम।

१-[यथाक्रम]

दो०-रंक, लोह, तरु, कीट ये परसि न लपटैं अंग।
कहा नृपति, पारस कहा, कह चंदन कह भृंग॥

यहाँ पहले चार वस्तुओं का उल्लेख किया—रंक, लोहा, तरु और कीट। फिर कहा कि ये चारों सत्संग पाकर अपना रूप न पलट दें तो राजा, पारस, चंदन और भृंग व्यर्थ ही हैं। यहाँ जिस क्रम से पूर्वार्द्ध में चार वस्तुओं के नाम आये हैं, उत्तरार्द्ध में ठीक उसी क्रम से उनको पलटानेवाली वस्तुओं के नाम भी आये हैं अर्थात् रंक के लिये नृपति, लोहे के लिये पारस, तरु के लिये चंदन और कीट के लिये भृंग। ऐसी ही वर्णन-प्रणाली में 'क्रम' अलंकार माना जाता है।

पुनः-दो०-गिरे अरिन के तकत तुव रूप रोष बिकरार।
तन ते मन ते करन ते स्वेद गरब हथियार॥

अर्थात् तेरा रोषपूर्ण रूप देखकर शत्रुओं के तन से, मन से और हाथों से गिर पड़े पसीना, गर्व और हथियार अर्थात् तन

से पसीना, मन से गर्व और हाथों से हथियार। यहाँ भी यथा-क्रम वर्णन है। इसी प्रकार और भी समझ लेना। यथा—

वंदौं राम नाम रघुवर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥

'राम' शब्द के तीन अक्षर र, अ, म, क्रम से अग्नि, सूर्य और चंद्रमा के हेतु कहे गये।

पुनः–शत्रुन को मित्रन को परम पवित्रन को घालियत, पालियत पूजियत पाये ते।

दो०–अमी हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इकबार॥
भौं चितवनि डोरे बरुनि असि कटार फँद तीर।
कटत फटत बंधत बिंधत जिय हिय मन तन वीर॥

पुनः—

जनि जलपना करि सुजस नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल, रसाल, पनस समा।
इक सुमनप्रद, इक सुमनफल, इक फलहि केवल लागहीं।
इक कहहिं, कहहिं करहिं अपर, इक करहिं, कहत न बागहीं।

सूचना-इस अलंकार को फ़ारसी, उर्दू तथा अरबी साहित्य में 'लफोनशर मुरत्तब' कहते हैं। इस अलंकार का एक उत्तम उदाहरण 'फिरदौसी' ने अपने 'शाहनामा' में लिखा है। फारसीदाँ पाठकों के लिये उसे हम यहाँ लिख देते हैं और हिंदीवालों के समझने के लिये उसका भावानुवाद भी किये देते हैं। रुस्तम की तारीफ में फिरदौसी लिखता है—

बरोजे नबर्द आँयलें अर्जुमंद। बशमशीरो, खंजर, बगुर्जो कमंद।
बुरीदो दरीदो शिकस्तो, बिबस्तयलाँर सिरो, सीनओ, पायो दस्त।

(भावानुवाद)

संगर में जब रुस्तम ने अपने विजयी हथियार उठाये।
खंग कटार गदा अरु पाश के अद्भुत यौं करतब्य दिखाये।

काटि गिरावत, फारत, तोरत, बाँधत चारि खनौ न लगाये।
शत्रुन के सिर और उरस्थल, पाद, भुजा नहिं जायँ गनाये।

इसमें यथाक्रम वर्णन किया गया है, चक्र देखो।

खंग	कटार	गदा	पाश
काटि गिरावत	फारत	तोरत	बाँधत
सिर	उरस्थल	पाद	भुजा

यथाक्रम का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण जो हमें मिला है वह यह है—

(छप्पय)

आनन बेनी नैन बैन पुनि दसन सुकटि गति।
ससि सर्पिन मृग पिक अनार केहरि करनिनपति।
पुरन खिझित जक तरुन पक्व बरपंच पुष्टबल।
सरद पताल बिछोह बाग तरु गिरि बनकज्जल।
निसि सन्निवेस सावक चुवत बिगस प्रसूती मद्झरत।
पृथिराज भनत बंसी बजत अस बनिता बनबन फिरत।

इसमें प्रथम चरण में ७ वस्तुओं के नाम लिये, पुनः दूसरे चरण में यथाक्रम उनके उपमान कहे। पुनः तीसरे, चौथे और पाँचवें चरणों में यथाक्रम उन्हीं उपमानों के विशेषण कहते चले गये हैं।

इस अलंकार का इससे बढ़कर हमें कोई उदाहरण नहीं मिला।

२—[भंगक्रम]

जिसमें कथित वस्तुओं का क्रम भंग हो जाय—

(यथा)

दो०—सचिव वैद्य गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
राज्य धर्म तनु तीन कर होइ वेग ही नास॥

यहाँ सचिव, वैद्य और गुरु के क्रम से राज्य, तनु और धर्म कहना चाहिये था, सो क्रमभंग है।

इसका फारसी तथा उर्दू में "फलोनशर गैर मुरत्तब" कहते हैं।

३—[विपरीतक्रम]

जिसमें पूर्वोक्त वस्तुओं के वर्णन का क्रम उलट दिया गया हो। जैसे—

राज्य नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाये। श्रमफल पढ़े किये अरु पाये॥

यहाँ चार वस्तुएँ कही गईं—राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या। फिर कहा गया है कि इन चारों के साथ अगर ये चार गुण न हों तो विद्या का पढ़ना, सत्कर्म का करना और धन तथा राज्य का पाना केवल श्रम मात्र है। यहाँ स्पष्ट देख पड़ता है कि जो क्रम वर्ण्य वस्तुओं का है, ठीक उसके विपरीत उनके वर्णन का है।

२९—परिवृत्ति

दो०—जहाँ अधिक अरु न्यून को लीवो दीवो होय।

विवरण—परिवृत्ति का अर्थ है 'अदलाबदला' वा लेना-देना। इसके तीन भेद हो सकते हैं—(१) बहुत देकर थोड़ा लेना। (२) थोड़ा देकर बहुत लेना। (३) सम देकर सम लेना।

जिनमें से तीसरे में हमारे मत से कोई अलंकारता नहीं आती, इससे हम केवल प्रथम दो के ही उदाहरण लिखेंगे।

१–(बहुत देकर थोड़ा लेना)

दो०—कासों कहिये आपनो यह अज्ञान यदुराय।
मनि मानिक दीन्हों तुम्हें लीन्हो बिरह बलाय॥

पुनः—तन मन धन दै प्रेम सों लाये रोग बिसाहि।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन देत पै लेत छटाँक नहीं।

२–(थोड़ा देकर बहुत लेना)

१—चारो फल देत चार चाउर चढ़ाये ते।

२—सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।
दिये सबै जहँ लौं जगत सुख गज रथ घोड़े।

३—इक धतूर फल दै सिवहिं लिय अमोल फल चारि।

४—तीन मूठी भर आजु दै करि अनाज आपु लीन्हीं यदु-
रायजू सों संपति धनेस की।

५—देखी त्रिपुरारी की उदारता अपार जहाँ पैये फल चारि एक फूल दै धतूरे को।

सूचना—इस अलंकार को 'विनिमय' भी कहते हैं।

३०–परिसंख्या

दो०—करि निषेध थल एकते राखिय औरहि ठौर।
बस्तु, धर्म, गुन, जाति जहँ परिसंख्या तेहि ठौर॥

विवरण—जहाँ किसी वस्तु, धर्म, गुण वा जाति को अन्य सब स्थानों से (जो उसके उपयुक्त माने जाते हों) वर्जित करके किसी एक विशेष स्थान पर ठहरावे, वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है। 'परिसंख्या' शब्द का अर्थ यहाँ पर "अपने स्थान से हटाई गई और दूसरे स्थान पर बैठाई हुई वस्तु की गणना" है। यथा—

दो०—नृपति राम के राज्य में हैं न सूल दुःखमूल।
लखियत चित्रन में लिखो संकर के करसूल ॥

यहाँ राज्य भर में 'शूल' (कष्ट) का वर्जन करके केवल चित्रित शंकर के हाथ में शूल (त्रिशूल) को स्थापित किया है। यही अलंकारता है। पुनः—

दो०—दंड जतिन कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतौ मनसिज सुनिय अस रामचन्द्र के राज ॥

यहाँ यह कहा गया कि रामराज्य में दंड (सजा) कहीं नहीं है, केवल नाममात्र को दंड (लाठी) संन्यासियों के हाथ में है। भेद (भेदनीति) कहीं नहीं है, केवल नृत्यक समाज में सुर, ताल, राग का इत्यादि का भेद (बिलगाव) देखा जाता है, और कोई किसी को जीतने का उद्योग नहीं करता, केवल काम को जीतने की इच्छा करते हैं। इसी प्रकार और भी समझना। जैसे—

कवित्त-साम को तो काम मुनिवर के मुखन माहिं,
और ठौर में तो तासो रंचक न काज है।
दाम जल भरिबे के काम ही में देखियत,
दंड को निवास एक कर यतिराज है।
'रतनेश' भेद एक सुर के मिलाइवे में,
देखो जहाँ होत गान नृत्य को समाज है।
साम दाम दंड भेद अनत न देखे कहूँ,
ऐसो सुखदाई रघुराज जू को राज है।

दो०—केसन ही में कुटिलता संचारिन में संक।
लखो राम के राज में इक ससि माहिं कलंक ॥

पुनः—(काव्य छुन्द)

मूलन ही को जहाँ अधोगति 'केसब' गाइय।
होम हुतासन धूम नगर एकै मलिनाइय ॥

दुर्गति दुर्गन ही जु कुटिल गति सरितन ही में।
श्रीफल को अभिलाष प्रकट कबिकुल के जी में॥

(रामचन्द्रिका)

पुनः—(कवित्त)

सत्रु को उथापि पीछे थापिबे, में व्रत भंग,
दीखत युधिष्ठिर में गिद्धन में कंकता।
कैद लोक कुल की त्यों बेद मरजाद ही में,
स्वैरगति मारुत में चातक में रंकता।
इति ग्रन्थ पूर्णता में 'संकर' लिखैया लिखैं,
चोरी इतिहास में है होरी में निसंकता।
चंद्रमा में काहू कालराहू ते ससंकता,
त्यौं द्वितिया में बंकता है पूनो में कलंकता॥१॥
आये जुरि जाँचिबे को जाँचक जहाँ लौं रहे,
एहो कबि 'रघुनाथ' आज तीनों थर में।
एते मान दान तिन्हें भूप दसरथ दीन्हें,
देत न दिखाई कहूँ कोऊ सौज घर में।
बसन के नाते पास बास कौसिला के एक,
भूषन के नाते नथ नाक छला कर में।
घोरे हाथी चित्रन के रहे चित्रसारी माहिं,
राम के जनम रहे दाम दफतर में॥२॥

दो०—पत्राही तिथि पाइये वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनों ही रहत आनन ओप उजास॥

कवित्त—अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारियत,
तुरगन ही में चंचलाई परकीति है।
'भूषन' भनत जहाँ पर लगैं बानन में,
कोक पच्छिनहिं माहिं बिछुरन रीति है।

गुनिगन चोर जहाँ एक चित्त होके,
लोक बँधे जहाँ एक सरजा की गुनि प्रीति है।
कंप कदली में बारि बुंद बदली में,
सिवराज अदली के राज में यों राजनीति है।

नोट—कभी-कभी प्रश्नोत्तर की रीति से भी यह अलंकार कहा जाता है।

दो०—सेव्य कहा ? तट सुरसरी, कहा धेय ? हरि पाद।
करन उचित कह धर्म नित, चित तजि सकल विषाद।

३१–समाधि

'समाधि' शब्द का अर्थ है 'शक्तिसंपन्न करना।'

दो०—और हेत के मिलन ते सुगम होय जहँ काज।

विवरण—आकस्मिक कारणांतर के योग से जहाँ कार्य अति सुगमता से हो जाय।

१-पावक जरत देखि हनुमंता। भयो परम लघु रूप तुरंता।
निबुकि चढ़्यो कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।
हरि प्रेरित तेहि अवसर चलै पवन उनचास।

हनुमानजी लंका को जलाना चाहते थे कि अकस्मात् उनचासों पवनों की सहायता से वह काम और भी सुगम हो गया।

२—मीत गमन अवरोध हित सोचत कछू उपाय।
तबही आकस्मात् तें उठी घटा घहराय॥

३—रामचन्द्र सोचत रहे रावन बधन उपाय।
सूपनखा ताही समय करी ठठोली आय॥

३२—संभावना

दो०—'होय जु यों तों होय यों' जहँ कहुँ बरनन होय।
अलंकार संभावना ताहि कहैं सब कोय॥

यथा—

१—दो०-उगै जो कातिक अंत की छनदा छोड़ि कलंक।
तो कहुँ तेरे बदन की समता लहै मयंक॥

२. जो छवि सुधा-पयोनिधि होई। परमरूपमय कच्छप सोई।
सोभा रजु मंदर सिंगारू। मथै पानिपंकज निज मारू।
यहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कबि कहैं सीय समतूल॥

३. जो तुम अवत्यो मुनि की नाईं। पदरज सिर सिसु धरत गुसाईं॥

४-मीत न नीति गलीत यह जौ धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जौ बचै तो जोरिये करोरि॥

सूचना—'प्रमाण' अलंकार के अंतर्गत एक भेद 'संभव' भी है। उसमें और इस संभावना अलंकार में यह भेद है कि इसमें तो निश्चय कहा जाता है कि 'यदि ऐसा होता तो ऐसा होता' और उस 'संभव' में केवल यह कहा जाता है कि 'ऐसा होना संभावित है'। हो या न हो, यह निश्चित नहीं।

३३—ललित

दो०—ललित अलंकृति जानिये कह्यौ चाहिये जौन।
ताही के प्रतिबिंब ही बरनन कीजै तौन॥

विवरण—जो वृत्तांत कहना है उसे न कहकर उसका प्रतिबिंबमात्र कहा जाता है। यथा—

१-लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधिगति बाम सदा सब काहू।

यहाँ 'रामजी का राज्याभिषेक था सो तो न हुआ उलटा बनवास हुआ' यह प्रस्तुत वृत्तांत है, सो नहीं कहा, उसका प्रतिबिंबमात्र कहा गया।

२-सोचहि दूषन दैवहिं देहीं। बिरचत हंस काक किय जेहीं।

३-यहि पापिनिहिं सूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावक धरेऊ।

४-दो०-सुनिय सुधा देखिय गरल सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥

'रामराज्य' की चर्चा केवल सुनने में आई, देखने में न आई, यह कहना था, सो न कहकर यों कहा।

५—मेरी सीख न सुनति सखि उलटे उठति रिसाय।
सोयो चाहति नींद भरि सेज अँगार बिछाय॥

६-तब न सीख मानी अली कियो बिचार न कोय।
चाखो चाहति अमृत फल विष को बीजा बोय॥

७—हे 'रघुनाथ' कहा कहिये कहते कछु बात नहीं बनि आवैं।
देखति हौ इनकी मति को ऋतु पावस बीति गये घर छावैं॥

३४—अर्थान्तरन्यास

अर्थान्तरन्यास=दूसरे प्रकार का अर्थ रखना।

दो०—*साधारण कहिये बचन कछु अवलोकि सुभाय।*
ताको पुनि दृढ़ कीजिये प्रगट विसेष बनाय॥
कै बिसेष ही दृढ़ करै साधारण कहि 'दास'।
ताको नाम बखानहीं कहि अर्थान्तरन्यास॥

विवरण—पहले कोई बात कही जाय, फिर यदि वह बात साधारण हो तो विशेष उदाहरण से और यदि विशेष हो तो

साधारण सिद्धांत से उसका समर्थन किया जाय। इन दोनों प्रकार के कथनों में अर्थांतरन्यास अलंकार माना जाता है।

(साधारण की दृढ़ता विशेष)

दो०—कारन ते कारज कठिन होय दोष नहिं मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल ते लोह कराल कठोर॥

इसमें दोहे के पूर्वार्द्ध में एक सामान्य बात कहकर उत्तरार्द्ध में विशेष प्रमाण द्वारा वही बात पुष्ट की गई है। पुनः—

१-दो०-बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय।
कनक धतूरे सों कहत गहनो गढ़ो न जाय॥

२-दो०-अति लघुहू सतसंग तें लहत उच्च पदवीसु।
कीट सु लहि सँग सुमन को चढ़त ईस के सीसु॥

३-दो०-जे छोड़त कुल आपनो ते पावत बहु खेद।
लखहु बंस तजि बाँसुरी लहै लोह को छेद॥

४-दो०-लागत निज मन दोषते सुन्दर हूँ बिपरीत।
पित्तरोग बस लखहिं नर सेत संख हूँ पीत॥

५-दो०-बरजत हूँ जाचक जुरैं दानवन्त की ठौर।
करी करन झारत रहैं तऊ भ्रमैं तहँ भौंर॥

६—राम भजन बिनु मिटहि न कामा।
थल बिहीन तरु कबहूँ कि जामा॥

७-छोटे, बड़े पद को पहुँचैं जब पावत हैं सतसङ्ग बिलास को।
पानके साथहै जात लखो छितनाथके हाथलौं पात पलास को॥

(विशेष का समर्थन सामान्य से)

१-अस कहि चला बिभीषन जबहीं। आयुहीन भे निसिचर तबहीं।
साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कर हानी॥

यहाँ पहले विशेष बात कही कि ज्योंही विभीषण लङ्का

को त्यागकर रामजी की शरण को चला त्योंही सब निशिचर आयुहीन हो गये, फिर साधारण सिद्धान्त से "साधुओं की अवज्ञा सर्वकल्याण को विनष्ट करती है"—उसकी पुष्टि की गई। इसी प्रकार और भी जानो।

२—हरि प्रताप गोकुल बच्यो, का नहिं करहिं महान।

इसमें 'हरि प्रताप गोकुल बच्यो'-यह विशेष बात है।

'का नहिं करहिं महान'-सामान्य बात से समर्थन है।

३—धूरि चढ़ी नभ पौन प्रसङ्ग ते कीच भई जल सङ्गति पाई।
फूल मिले नृप पै पहुँचे कृमि कीटन संग अनेक व्यथाई॥
चन्दन सङ्ग कुदारु सुगन्ध ह्वै निंब प्रसंग लहै करुवाई।
'दास' जू देखो सही सब ठौरन संगति को गुन दोष सदाई॥

इसमें प्रथम के तीन चरणों में विशेष बातें कहके चौथे चरण में साधारण सिद्धान्त द्वारा उन सबकी पुष्टि की गई है। पुनः—

४—दो०—कैसे फूले देखियत प्रात कमल के गोत।
'दास' मित्र उद्दोत लखि सबै प्रफुल्लित होत॥

५-परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय ययातिहिं यौवन दयऊ। पितु आज्ञा अघ अजस न भयऊ॥

३५—तद्‌गुण

दो०—छोड़ि आपनो गुन जहाँ औरन को गुन लेत।
अलंकार तद्‌गुन तहाँ बरनैं कवि करि हेत॥

विवरण—'गुण' शब्द का अर्थ इस अलङ्कार में केवल 'रंग' है।

'भूषण' ने स्पष्ट कहा है—

दो०—जहाँ आपनो रंग तजि गहै और को रंग।
ताको तद्गुन कहत हैं भूषन बुद्धि उतंग॥ यथा—

१—जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यौं 'पद्माकर' हीर के हारन गंग तरंगन सी सुखदेनी॥
पायन के रंग सों रँगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी।
पैरै जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबेनी।

२—गई बिसद रँग रुचिरई भई अरुन छबि नौल।
लै मुकुता कर में करति तूँ मूँगा को मौल॥
३—सोनजुही सी होति दुति मिलत मालती माल।
४—अधर धरत हरि के परत ओंठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रँग होति॥

सूचना—किसी-किसी आचार्य का मत है कि 'रंग' के अलावा 'रस' और 'गंध' भी इसी अलंकार का विषय है। परंतु हमें जितने उदाहरण इसके मिले हैं वे सब रंग ही से संबंध रखते हैं और भूषण ने तो परिभाषा ही में 'रंग' शब्द कह दिया है।

३६—अतद्गुण

दो०—रहै आन के संगहू गुन न आन को होय।
ताहि अतद्गुन कहत हैं कबि कोबिद सब कोय॥

विवरण—तद्गुण का उलटा इसे समझना चाहिये। इसमें भी केवल रंग का विचार ही मुख्य है। यथा—

१—लाल बाल अनुराग सों रँगत रोज सब अंग।
तऊ न छोड़त रावरो रूप साँवरो रंग॥
२—गंगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात।
हंस हरत तो सुभ्रता तैसिय बढ़ न घटात॥

३—सिव सरजा की जगत में राजति कीरति नौल।
अरि तिय अंजन दृग हरै तऊ धौल की धौल॥

३७—लोकोक्ति

दो०—*लोकोकति जहँ लोक की कहनावत ठहराउ।*
राजा करै सो न्याउ है, पासा परै सो दाउ॥

यथा—
१-फिर रैहै न रैहै यहो समयो बहती नदी पाँय पखारि ले री।
२-भो बिधना प्रतिकूल जबै तब ऊँट चढ़े पर कूकुर काटत।
३-बृथा मरहु जनि गाल बजाई। मन मोदकनि कि भूख बुझाई।
४-देव कहा हम तुमहिं गुसाईं। ईंधन पात किरात मिताई।
५-कर्म प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करै सो तस फल चाखा॥

सूचना—अँगरेजी में इसे इडियम (Idiom) कह सकते हैं। फारसी और उर्दू में इस अलंकार को "इरसालुल मसल" कहते हैं।

स्मरण रखना चाहिये कि केवल लोकोक्ति मात्र के कथन में अलंकार न होगा। प्रसंग बनाकर अंत में लोकोक्ति पर घटित करने से अलंकारता आवेगी।

हिन्दी-साहित्य में 'ठाकुर' (बुंदेलखंडी) कवि की कविता में लोकोक्तियों की योजना सराहनीय मानी जाती है।

३८—छेकोक्ति

दो०—*जहं परार्थ की कल्पना लोकोकति में होय।*
छेकोकति तासों कहैं कबि कोबिद सब कोय॥

विवरण—जहाँ लोकोक्ति का प्रयोग साभिप्राय हो, अर्थात्

पहले कोई बात कहके उपमान वाक्य की भाँति लोकोक्ति कही जाय, वहाँ छेकोक्ति होगी। यथा—

१-दो०—जे सोहात सिवराज को ते कवित्त रसमूल।
जे परमेश्वर पै चढ़ैं तेई आछे फूल॥

२-दुरावत हौ सहवासिन सों 'रघुनाथ' बृथा बतियान के जोर।
सुनौ जग में उपखान प्रसिद्ध है चोरन की गति जानत चोर।

३-औरँग जो चढ़ि दक्खिन आवे तो ह्याँ ते सिधावै सोऊ बिन कप्पर।
दीनो मुहीम को भार बहादुर छागो सहै क्यों गयंद को झप्पर॥
सासता खाँ सँग वे हठि हारे जे साहेब सातएँ ठाँके भुवप्पर।
ये अब सूबहू आवैं सिवा पर काल्हि के जोगी कलींदे को खप्पर॥

४-छिति नीर कृसानु समीर प्रकास ससीर बिहू तन रूपधरै।
अरु जागत जीवत हू 'मतिराम' सो आपनी जोति प्रकास करै॥
जग ईस अनादि अनंत अपार वही सब ठौरन में बिहरै॥
सिगरे तन मोहन मोय रहे तिन ओट पहार न देखि परै॥

६-सत्य सराहि कहौ बर देना। जानेहु लेइहि माँगि चवेना॥

३९—स्वभावोक्ति

दो०—जाको जैसो रूप गुन बरनत ताही साज।
सुभावोक्ति भूषन तहाँ कहैं सवै कबिराज॥

विवरण-जाति वा अवस्था के अनुसार जिसका जिस समय जैसा प्राकृतिक कृत्य हो वैसा ही कहना स्वभावोक्ति अलंकार है। इसके दो प्रकार हैं-(१) सहज (२) प्रतिज्ञाबद्ध।

१—सहज

१-दो०-धूरि धुरेटे धरनि में धरत लटपटे पाय।
लाल अटपटे आखरन भाषत सखि हरषाय॥

२-धूसर धूरि भरे तनु आये। भूपति बिहँसि गोद बैठाये॥

३—दो०-भोजन करत चपल चित इत उत अवसर पाय।
भागि चलत किलकात मुख दधि ओदन लपटाय॥

[कृष्णबानिक]

४—सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो उर बसो सदा बिहारी लाल॥

[तुरंग स्वभाव]

५-जित रुख पावै तित पहुँचावै छन आवै छन जावै।
जमि जमि थमि थमि थिरकि भूमि पर गति नहिं तेहि दरसावै।
फाँदत चंचल चारु चौकड़ी चपलहु के चख झाँपै।
भरत कुँवर को तुरँग रँगीलो बरनि जाय कहु कापै॥

[कुलस्वभाव]

६-कहौं सुभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुवंसी।
७-रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाइ बरु बचन न जाई।

(तात्पर्य यह कि जिस समय जिसका जैसा रूप गुण हो; उस समय वैसा ही कहना)

सूचना—किसी का कोई स्वाभाविक गुण साधारणतः प्रकट नहीं होता, वह किसी मनोविकार की उत्तेजना के समय प्रतिज्ञारूप से प्रकट होता है। उसे प्रतिज्ञाबद्ध स्वभाव कहते हैं। ऐसे स्वभाव का वर्णन भी स्वभावोक्ति ही कहा जाता है। जैसे—

२—प्रतिज्ञाबद्ध स्वभावोक्ति

१-सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। यहि तन सिवहिं भेंट अब नाहीं॥
२-दो०-तोरों छत्रक दंड जिमि तुव प्रताप बल नाथ।
जो न करौं प्रभु पद सपथ पुनि न धरौं धनु हाथ॥
३-जो सत संकर करैं सहाई। तदपि हतौं रन राम दोहाई॥

सूचना—ऐसी स्वभावोक्ति सशपथ वा असंभव कथन द्वारा प्रकट की जाती है। यथा—

४-वारि टारि डारौं कुंभकर्णहिं बिदारि डारौं,
मारौं मेघनादै आजु यौं बल अनंत हौं।
कहै 'पद्माकर' त्रिकूटहूँ को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन को अन्त हौं॥
अच्छहिं निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तो से तिच्छ तुच्छन कौ कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावन को तो मैं हनुमंत हौं॥

५—लोक तिहूँ जारौं सातो सागर सुखाय डारौं,
गिरिन ढहाय डारौं भूमि उलटाऊँ मैं।
रंच में बिदारि डारौं दसो दिगपालन को,
खगन समेत ससि सूरहिं गिराऊँ मैं॥
नभते पताल लैके कितहूँ कहूँ जो नेक,
'रसिकबिहारी' प्रानप्यारी सुधि पाऊँ मैं।
जानकी न लाऊँ तौ पै छत्री न कहाऊँ,
राम नाम पलटाऊँ धनुबान ना उठाऊँ मैं॥

४०—अत्युक्ति*

दो०—योग्य व्यक्ति की योग्यता अति करि बरनी जाय।
भूषन सो अत्युक्ति है समुझैं जे मतिराय॥
सुन्दरता अरु सूरता अरु उदारता भाव।
या भूषन में कहत ही उर उपजै अति चाव॥

---

* इस अलंकार को अँगरेजी में 'एग्जैगरेशन' (Exaggeration) और फारसी तथा उर्दू में 'मुबालिगा' कहते हैं।

(सुन्दरता)

दो०—भूषन भार संभारि है क्यौं वह तन सुकुमार।
सूधे पाँय न धर परत महि सोभा के भार॥

पुनः—सुमनमयी महि में करै जब राधिका बिहार।
तब सखियाँ संगहि फिरै हाथ लिये कचभार॥

(शूरता)

१—जासु त्रास डर कहँ डर होई।

२—जा दिन चढ़त दल साजि अवधूतसिंह,
ता दिन दिगंत लौं दुवन दाटियतु है।
प्रलै कैसे धराधर धमक नगारा धूरि,
धारा ते समुद्रन की धारा पाटियतु है।
'भूषन' भनत भुवगोल कोल हहरत,
कहरत दिग्गज मगज फाटियतु है।
कीच से कचर जात सेष के असेष फन,
कमठ की पीठि पै पिठी सी बाँटियतु है।

छन्द—कह 'दास तुलसी' जबहि प्रभु सरचाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

दो०—इतै उच्च सैलन चढ़े तुव डर अरि सकलत्र।
तोरत कंपित करन सो मुकुता समुझि नक्षत्र॥

(उदारता)

१-दो०—बारिद लौं वसु बरसि के कविकुल किये कुबेर।
निकट जो होतो मेरु तो देत न होती देर॥

२-जाचक तेरे दान ते भये कल्पतरु भूप॥

३-मैं हौं अनाथ अनाथन में तजि तेरोइ नाम न दूजो सहायक।
मंगन तेरे के मंगन ते कलपद्रुम आजु है माँगिबे लायक॥

४—संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत बिलंब उर धारै ना।
कहै 'पद्माकर' सुहेम हय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरै बिचारै ना॥
गजगंजबकस महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही,
गिरि तें गरे तें निज गोद तें उतारै ना॥

५-दो०-गनत न कछु पारस पदुम चिंतामनि के ताहिं।
निदरत मेरु कुबेर को तुव जाचक जग माहिं॥

सूचना—केवल सुन्दरता, शूरता और उदारता ही में नहीं, बरन् और वस्तुओं में भी अत्युक्ति हो सकती है। यथा—

(प्रेमात्युक्ति)

कागद पर लिखत न बनत कहत संदेस लजात।
कहि है सब तेरो हियो मेरे हिय की बात॥

(विरहात्युक्ति)

गोपिन के अँसुवन भरी सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार॥

इसी प्रकार और भी समझ लो।

अत्युक्ति सब वस्तुओं की हो सकती है, परन्तु सुन्दरता, शूरता और उदारता की अत्युक्ति अत्यन्त आनन्ददायक होती है; इसी से परिभाषा में केवल इन्हींके नाम गिनाये गये हैं।

४१—हेतु

(पहला)

दो०—कारज कारन संगही जहँ बरनै इकठौर।
प्रथम हेतु तासों कहत जिनकी मति सिरमौर॥

१—भाग जगे 'लछिराम' दुहून में छाये तरंग सुप्रीति भली के।
रामसुरूप निहारत ही उर मोद बढ़े मिथिलेस लली के॥

२—उयो अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता।

३-जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥

३—अरुनोदय सकुचे कुमुद उड़गन जोति मलीन।

५—उयो भानु बिनुश्रम तमनासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा।

६—आपुहिं सुनि खद्योतसम रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसियान॥

(दूसरा)

दो० कारन कारज ये जबै लसत एकता पाय।
हेतु अलंकृति दूसरी ताहि कहैं, कबिराय॥

विवरण—जहाँ कारण ही को कार्य रूप में वर्णित करते हैं वहाँ दूसरा 'हेतु' होता है। जैसे—

१—मेरी रिद्धि समृद्धि है तुव दाया रघुनाथ।

२—परम पदारथ चारहू श्री राधा गोबिन्द।

३—कोऊ कोरिक संग्रहो कोऊ लाख हजार।
मो संपति यदुपति सदा बिपति बिदारन हार॥

४—मोहिं परम पद मुक्ति सब, तो पदरज घनस्याम।
तीन लोक को जीतिबो, मोहिं बसिबो ब्रजग्राम॥

